

भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालिका उद्देश्य
मातृव संस्कृत आदि भाषाओंमें निबद्ध दि. मैनागव,
दर्शन, साहित्य, पुराण आदिको पद्यासम्पन्न
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करना

संस्थापक
भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थांक १-७

प्रातिष्ठान
मेनेजर
भा दि० जैनसंघ
बौध्दी, गुरु

मुद्रक—पं० शिवशरणायण छपाईशाला बी० ए०
नया संसार प्रेस मैनौरी बाराणसी ।

Sri Dig Jain Sangha Granthamala No 1-VII

KASAYA-PAHUDAM VII

PRADESHAVIBHAKTI

BY

GUNADHARACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF

VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY

Pandit Phulachandra Siddhantashastri

EDITOR MAHABANDHA

JOINT EDITOR DHAVALA.

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirtha Siddhantaratna,

Pradhanadhyapak Syadvada Digambara Jain

Vidyalyaya Varanasi

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT

THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA

CHAUHASI, MATHURA

विषय-परिचय

पूर्वमें प्रकृतिविमर्शित स्थितिविमर्शित और अनुयोगविमर्शित विचार कर आये हैं। प्रकृतिमें प्रदेशविमर्शित विचार करना है। कर्मों का बन्ध होने पर उत्पन्न बन्धको प्राप्त ज्ञानवाले ज्ञान्यपर्यायि व्याठ या सात कर्मों को जो द्रव्य मिलता है उसकी प्रदेशा र्था है। यह जो प्रकारका है—एक मात्र बन्धके समय प्राप्त होकराता द्रव्य और दूसरा बन्ध होकर सत्तामें स्थित द्रव्य। संवत् बन्धके समय प्राप्त होनेवाले द्रव्यका विचार महाबन्धमें किया है। यहाँ वर्तमान बन्धके स्वयं सत्तामें स्थित त्रितर्का द्रव्य होता है उस सत्ता का विचार किया गया है। उसमें भी ज्ञान्यपर्यायि सब कर्मों की अपेक्षा विचार न कर यहाँ पर मात्र मोक्षनीयकर्मों की अपेक्षा विचार किया गया है। मोक्षनीयकर्मों के कुल भेद पाँचार्थ हैं। सर्व प्रथम इन भेदों का आश्रय सत्य सत्य और वाच्ये इन भेदों का आश्रय केवल प्रस्तुत अधिकार में विविध अनुयोगादिके आश्रयसे प्रदेशविमर्शित स्वाज्ञोपाद विचार किया गया है। यहाँ पर विभिन्न अनुयोगादिके आश्रयसे विचार किया गया है वे अनुयोगादिके हैं—आगाभ्याग सर्वप्रदेशविमर्शित, मोक्षप्रदेशविमर्शित, कष्टप्रदेशविमर्शित, अनुकूल प्रदेशविमर्शित, अप्रत्यक्ष प्रदेशविमर्शित, अज्ञानप्रदेशविमर्शित, स्वविप्रदेशविमर्शित, अज्ञाविप्रदेशविमर्शित, भ्रूषप्रदेशविमर्शित, अभ्रूषप्रदेशविमर्शित, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व काल आन्तर मध्य जीवों की अपेक्षा बहुविचय परिमाण, क्षेत्र, स्थान काल आन्तर, मध्य और अस्वयंकुल। मात्र उत्तरप्रदेशविमर्शित विचार करते समय सन्निकर्ष न्यायक एक अनुयोगादिके और अधिक हो जाता है। कारण स्पष्ट है।

भागाभागा—इस अनुयोगादिके कष्ट, अनुकूल, अप्रत्यक्ष और अज्ञान इन चार वर्गों का आश्रयकर एक बार जीवों की अपेक्षा और दूसरी बार सत्ता में स्थित कर्म परमाणुओं की अपेक्षा और किन्तु भागप्रमाण है इसका विचार किया गया है इसलिये इस दृष्टिसे भागाभागा दो प्रकारका है—जीवभागाभागा और प्रदेशभागाभागा। जीवभागाभागा का विचार करते हुए बतलाया है कि कष्ट प्रदेशविमर्शितसे जीव-सत्ता जीवों के अनन्तर्से भागप्रमाण है और अनुकूल प्रदेशविमर्शितसे जीव सत्ता जीवों के अन्तर्से अनुयोगप्रमाण है। इसीप्रकार अप्रत्यक्ष प्रदेशविमर्शितसे और अज्ञानप्रदेशविमर्शितसे जीवों के विषयमें जानना चाहिए। यह बोध प्रत्यक्ष है। आदेशसे सब मार्गजाओंमें अपनी-अपनी मंशाओं को जानकर यह भागाभागा समझ लया चाहिए। प्रदेश भागाभागा का विचार करत हुए सर्व प्रथम तो स्वाम्यसे मोक्षनीय कर्मों की अपेक्षा प्रदेशभागाभागा विचार किया है क्योंकि अज्ञानप्रदेशों की विषया किन्तु सत्य मोक्षनीय कर्म एक है, इसलिये उसमें भागाभागा प्रतिष्ठ नहीं होता। इसके बाद ज्ञान्यपर्यायि व्याठ कर्मों की अपेक्षा स्वाम्यसे मोक्षनीय कर्मों का किन्तु द्रव्य मिलता है इसका विचार करते हुए बतलाया गया है कि आठों कर्मों का जो समुच्चय द्रव्य है उसमें आश्रितिके आश्रयतर्से भाग्य भाग देनेपर जो लब्ध आ। उस सब द्रव्यसे अलग करके बचे हुए क्षेत्र अनुयोगप्रमाण द्रव्यके आठ पुञ्ज करके आठों कर्मों में अलग-अलग विभक्त करके। इसके बाद जो एक भाग बचा है उसमें पुनः आश्रितिके अश्रयतर्से भाग्य भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आ। उसे अलग करके शेष भागप्रमाण द्रव्य वर्गीयको ह। पुनः सब हुए एक भागमें आश्रितिके अश्रयतर्से भाग्य भाग देने पर जो भाग्यप्रमाण द्रव्य शेष रह उसे आश्रितिके ह। लब्ध द्रव्यमें पुनः आश्रितिके

असंख्यातर्वे भागका भाग देने पर जो बहुभाग शेष रहे वह समान रूपसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मों में बाँट दे। लब्ध द्रव्यमें पुनः आवलिके असंख्यातर्वे भागका भाग देने पर बहुभागप्रमाण घचे हुए द्रव्यको नाम और गोत्र इन दो कर्मों में बाँट दे। तथा अन्तमें लब्ध रूपमें जो एक भाग बचता है वह आयु कर्मको दे दे। इस प्रकार विभाग करनेपर मोहनीय कर्मको प्राप्त हुआ द्रव्य आ जाता है। मोहनीयकर्मको प्राप्त हुआ यह द्रव्य उत्कृष्ट और जघन्यके भेदसे दो प्रकारका होकर भी सब कर्मों की अपेक्षा पूर्वमें जो विभागका क्रम बतलाया है उसमें कोई बाधा नहीं आती। इस प्रकार ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को जो द्रव्य मिलता है उसका अलग अलग विचार करनेपर आयु कर्मको सबसे स्तोक द्रव्य मिलता है। नाम और गोत्र कर्मका द्रव्य परस्परमें समान होकर भी आयुकर्मके द्रव्यसे विशेष अधिक होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मको मिलनेवाला द्रव्य परस्परमें समान होकर भी नाम और गोत्रकर्मको मिले हुए द्रव्यसे विशेष अधिक होता है। इससे मोहनीय कर्मका द्रव्य विशेष अधिक होता है और मोहनीयके द्रव्यसे वेदनीयकर्मका द्रव्य विशेष अधिक होता है। यह ओघप्ररूपणा है। सब मार्गणाओंमें इसे इसीप्रकार यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

उत्तरप्रकृतियोंमें मोहनीय कर्मके सब द्रव्यका विभाग करते हुए पहले उसमें अनन्तका भाग दिलाकर एक भाग सर्वधाति द्रव्य और शेष बहुभाग देशधाति द्रव्य बतलाया गया है। देशधाति द्रव्यमें भी कषाय और नोकषाय रूपसे उसे बाँटा गया है। बादमें प्रत्येकका अपने अपने अवान्तर भेदोंमें बटवारा किया गया है। इसी प्रकार सर्वधाति द्रव्यको भी सर्वधाति प्रकृतियोंमें विभक्त करके बतलाया गया है। इस विषयकी विशेष जानकारीके लिए मूलमें देख लेना चाहिए। गति आदि मार्गणाओंमें विचार करते समय नरकगतिमें जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश करके अन्यत्र भी जान लेने की सूचना की गई है। इस प्रसङ्गसे गतिसम्बन्धी जिन मार्गणाओंमें नरकगतिसे कुछ विशेषता है उसका निर्देश करके उत्कृष्ट भागाभाग प्ररूपणाको समाप्त किया गया है। जघन्य भागाभागका भी इसी प्रकार स्वतन्त्रतासे विचार करते हुए ओघ और आदेशसे उसका अलग अलग स्पष्टीकरण किया गया है। आदेशप्ररूपणा की अपेक्षा मात्र नरकगतिमें विशेष विचार करके गतिमार्गणाके जिन अवान्तर भेदोंमें नरकगतिके समान जघन्य भागाभाग सम्भव है उनका नाम निर्देश करके इस प्रकारको समाप्त किया गया है।

सर्व-नोसर्वप्रदेशविभक्ति—सर्वप्रदेशविभक्तिमें सब प्रदेश और नोसर्वप्रदेशविभक्तिमें उनसे न्यून प्रदेश विवक्षित हैं। मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें ये यथायोग्य ओघ और आदेशसे घटित कर लेने चाहिए।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्ति—सबसे उत्कृष्ट प्रदेश उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति है और उनसे न्यून प्रदेश अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके ओघ और आदेशसे जहाँ पर ये जितने सम्भव हों उन्हें उस प्रकारसे जान लेना चाहिए।

जघन्य-अजघन्यप्रदेशविभक्ति—सबसे कम प्रदेश जघन्य प्रदेशविभक्ति है और उनसे अधिक प्रदेश अजघन्य प्रदेशविभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके ओघ और आदेशसे जहाँ पर ये जिसप्रकार प्रदेश सम्भव हों उन्हें उस प्रकारसे जान लेना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशविभक्ति—सामान्यसे मोहनीयके क्षय होनेके अन्तिम समयमें जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और इससे पूर्व सब अजघन्य प्रदेशविभक्ति है, अतः अजघन्य प्रदेशविभक्ति सादि विकल्पके बिना अनादि, ध्रुव और अध्रुव यह तीन प्रकारकी

होती है। अब यहाँ वृत्त, अगुत्त और जघन्य प्रदेशविभक्तियों से ये साहि और अग्रु इस तरह से प्रश्न की ही होती हैं। जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षयपाके अन्तिम समयमें होती है इसलिये यह साहि और अग्रु है। तथा वृत्त और अगुत्त प्रदेशविभक्ति अक्षयपाके हैं, इसलिये ये भी साहि और अग्रु हैं। यह ओष प्रत्यय है। आदेशसे सब गतियों परिवर्तनशील हैं, अतः जन्में तक सब प्रदेशविभक्तियाँ साहि और अग्रु ही होती हैं। आगे अन्य मार्गशायीमें भी इसी प्रकार विचार कर बहिर कर लेना चाहिये। उत्तर प्रकृतिबोकी अपेक्षा मिथ्यात्व मध्यकी आठ कपाय और पुरुषत्वके किना आठ नोकपाय इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षयपाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनकी भी वृत्त, अगुत्त और जघन्य प्रदेशविभक्तियाँ साहि और अग्रु तथा अक्षय्य प्रदेशविभक्तियाँ अन्यरि, भ्रुव और अग्रु होती हैं। पुरुषत्वके लक्ष्यसे क्षयक्रमेण पर बड़ा हुआ जो शुषितकर्मांशभासा बीच जब बीचकी अन्तिम फलिको पुरुषत्वसे संक्रमित करता है तब पुरुषत्वकी एक समयके क्षिप वृत्त प्रदेशविभक्ति होती है। यही बीच जब पुरुषत्व और यह नोकपाके क्षयको संवत्सन कोषमें संक्रमित करता है तब संवत्सन कोषकी एक समयके क्षिप वृत्त प्रदेशविभक्ति होती है। यही बीच जब संवत्सन कोषके क्षयको संवत्सनमात्रमें संक्रमित करता है तब संवत्सनमानकी वृत्त प्रदेशविभक्ति होती है। यही बीच जब संवत्सनमानके क्षयको संवत्सन गायमें संक्रमित करता है तब संवत्सन मायाकी वृत्त प्रदेशविभक्ति होती है। तथा यही बीच जब संवत्सन मायाके क्षयको संवत्सन लेखमें संक्रमित करता है तब संवत्सन सामकी वृत्त प्रदेशविभक्ति होती है। तथा इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षयपाके अन्तिम समयमें होती है। इस प्रकार इन पाँचोंकी वृत्त और जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समयके क्षिप होती है इसलिये ये साहि और अग्रु हैं। तथा इनकी अक्षय्य प्रदेशविभक्ति अनादि भ्रुव और अग्रु हैं। मात्र पुरुषत्वका जघन्य प्रदेशास्तर्क क्षयितकर्मांश अक्षय्यक्षयके अन्तिम समयमें होती है, इसलिये इसकी अक्षय्य प्रदेशविभक्ति साहि भी बन जाती है। तथा इन पाँचोंकी अगुत्त प्रदेशविभक्ति साहि अनादि भ्रुव और अग्रु चारों प्रकारकी है। जब तक इनकी वृत्तप्रदेशविभक्ति नहीं प्राप्त होती तब तक ता यह अनादि, भ्रुव और अग्रु है और वृत्तसे यह यह साहि है। अन्यस्त और अन्य निम्यत्वात् ये गतियों साहि और आन्त हैं इसलिये इनके चारों ही पर साहि और अग्रु हैं। अतन्नामुबन्धी वदुच्छकी वृत्त और अगुत्त प्रदेशविभक्तियाँ अक्षयपाके हैं जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षयपाके अन्तिम समयमें होती है इसलिये ये तीनों साहि हैं। तथा क्षयपाके पूर्व इनकी अक्षय्य प्रदेशविभक्ति नियमसे होती है इसलिये ता यह अनादि है। तथा क्षयपाके बाद पुनः संवत्सन क्षय पर यह साहि है। भ्रुव और अग्रु निश्चय तो यहाँ सम्भव हैं ही। इस प्रकार इनकी अक्षय्य प्रदेशविभक्ति चारों प्रकारकी प्राप्त होती है। यह ओषप्रत्यय है। आदेशसे अक्षय्यराम और अक्षय्यमार्गशायी ओषप्रत्यय यह जाती है। मात्र मध्यमार्गशायी भ्रुव मात्र सम्भव नहीं है। शेष सब मार्गशायी परिवर्तनशील हैं अतः जन्में सब गतियोंकी वृत्त आदि चारों विभक्तियाँ साहि और अग्रु ही प्राप्त होती हैं।

इतिहास—सामान्य मोहनीयकी वृत्त प्रदेशविभक्ति इस स्थानी देखा शुषितकर्मांशका और हाता है जो अक्षय्यक्षयिक्रमों और बाहर जसों परिलक्षण करके अन्तमें हा बाहर मानने नरकक नापिकोंमें अक्षय्य हाकर अन्तर्मुर्तुन कम पूरी आयु बिना पुछा है। यहाँ वृत्त प्रदेशविभक्ति इस स्थानी किम समय होता है इस सम्बन्धमें तो मत हैं। एक मतके अनुसार अन्तर्मुर्तुन नरकयु क्षय रहनर इतके प्रथम समयमें हाता है और दूसरे मतके अनुसार

नरकके अन्तिम समयमें होता है। मिथ्यात्व, बारह कपाय और छह नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश विभक्तिका स्वामी इसी प्रकार जानना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव जब मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। तथा जब वही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा गुणितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें ईशान कल्पमें उत्पन्न होकर उसके अन्तिम समयमें स्थित है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसे अन्तमें असख्यात वर्षकी आयुवालोंमें उत्पन्न कराकर पत्युके असख्यातवर्ष भागप्रमाण कालके द्वारा स्त्रीवेदका पूरण कराकर प्राप्त करना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक जीव क्रमसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदको यथायोग्य पूरकर अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शीघ्र ही कर्मोंका क्षय करता हुआ जब स्त्रीवेदको पुरुषवेदमें संक्रमित करता है तब पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब पुरुषवेदको क्रोधसञ्चलनमें संक्रमित करता है तब क्रोधसञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब क्रोधसञ्चलनको मानसञ्चलनमें संक्रमित करता है तब मानसञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब मानसञ्चलनको मायासञ्चलनमें संक्रमित करता है तब मायासञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है और वही जीव जब मायासञ्चलनको लोभसञ्चलनमें संक्रमित करता है तब लोभसञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। यह ओघसे उत्कृष्ट स्वामित्व है। ओघसे सामान्य मोहनीयकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिका स्वामी क्षपितकर्मांशिक जीव क्षपणाके अन्तिम समयमें होता है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते समय मिथ्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त है। तथा वही जीव जब दर्शनमोहनीयकी क्षपणा किये बिना मिथ्यात्वमें जाकर दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए अपने अपने समयमें दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त होता है तब वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है। मध्यकी आठ कपायोंके विषयमें ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव लेना चाहिये जो अभव्योंके योग्य जघन्य प्रदेशविभक्ति करके त्रसोंमें उत्पन्न हुआ है और वहाँ आगमोक्त क्रिया व्यापार द्वारा उसे और भी कम करके अन्तमें क्षपण कर रहा है। ऐसे जीवके जब इनकी दो समय कालवाली एक स्थिति शेष रहती है तब वह इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब अनन्तानुबन्धीको बार बार विसयोजना कर लेता है और अन्तमें दो छयासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन करके पुनः उसकी विसयोजना करता है तब वह अनन्तानुबन्धी चतुष्करी दो समय कालवाली एक स्थितिके रहते हुए उनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका भी क्षपितकर्मांशिक जीव ही अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें उदयस्थितिके सद्भावमें जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपक पुरुषवेदी होता है जो जघन्य घोलमान योगसे पुरुषवेदका बन्ध करके उसका संक्रमण करते हुए अन्तिम समयमें स्थित है। इसी प्रकार सञ्चलन क्रोध, मान और मायाकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी घटित कर लेना चाहिये। लोभ सञ्चलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी क्षपक अधकरणके अन्तिम समयमें होता है। तथा छह नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी भी ऐसा क्षपक होता है जो अन्तिम स्थिति काण्डकके संक्रमणके अन्तिम समयमें स्थित है। यह ओघसे जघन्य स्वामित्व है। आदेशसे

मूल और चतुर प्रकृतियोंका वल्लभ और ब्रह्म स्वामित्व चारों गतियोंकी अपेक्षासे तो मूलमें ही कहा है, इसलिये इसे वहाँसे ध्यान लेना चाहिये। तथा ब्रह्म मार्गश्रवणमें लक्ष स्वामित्वको देखकर पटित कर लेना चाहिये। यहाँ पर मूलमें ब्रह्म प्रवेशासक्त्यमें सेवर उत्कृष्ट प्रवेशासक्त्यमें तक किस प्रकृतिके साम्प्रत और गिराकर किन्तु स्वायत्त किस प्रकार प्राप्त होते हैं यह सब कवन विस्तारके साथ किया है सो लक्षे वहाँ मूलमें ही देखकर समझ लेना चाहिये।

काता—सामान्यसे मोक्षनीयका उत्कृष्ट प्रवेशासक्त्यमें तेरीस सगरकी आनुपाते नारकीके अन्तिम समयमें होता है, इसलिये इसका ब्रह्म और वल्लभ का एक समान है। इसकी अनुकृष्ट प्रवेशासक्ति जो उत्कृष्ट प्रवेशासक्त्यमें करके पदभिन्नियोंमें अप्रमत्त हुआ है उसके अनन्तकाल तक देली जाती है, इसलिये इसका ब्रह्म और उत्कृष्ट का असमन्तकाल है। किन्तु यदि परिमान्योकी सुखमत्तसे देखा जाय तो अनुकृष्ट प्रवेशासक्तिका ब्रह्म का असंक्रान्त लोकप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि सब प्रकारके प्रवेशासक्त्यमें करणमूल परिणाम ही असंक्रान्त लोकप्रमाण हैं। और जिसन सातवें नरकमें उत्कृष्ट प्रवेशासक्त्यमें करके स्वाधिति मनुष्य पर्वत प्राप्त कर आठ बरैकी अवस्थामें ही क्षणमेधिर भारोदयकर मोक्षनीयका नारा किया है उसकी अपेक्षासे देखा जाय तो अनुकृष्ट प्रवेशासक्तिका ब्रह्म का आठ बरै अधिक अन्तर्गुह्य प्राप्त होय है। मिथ्यात्व चारि अनादि प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट प्रवेशासक्तिका यह काय इसी प्रकार जानना चाहिये। मात्र कुछ प्रकृतियोंके कालमें कुछ विशेषण है। पचा—अनन्तानुबन्धीकी अनुकृष्ट प्रवेशासक्ति जो अन्तर्गुह्यके अन्तर्गुह्य से चार किंसोबना करय है उसके होती है, इसलिये इसका ब्रह्म काय मात्र अन्तर्गुह्य ही प्राप्त होता है। जैसा कि स्वामित्वमें बल्ला नामे हैं चार संक्रान्त और पुनर्बन्धी उत्कृष्ट प्रवेशासक्ति पचाचाम्य क्षणमेधिर होती है, इसलिये इनकी अनुकृष्ट प्रवेशासक्ति का अनादि अनन्त अनादि-साम्प्रत और सारि-साम्प्रत यह तीन प्रकारका प्राप्त होय है। अनादि-अनन्त काय अमर्योके होय है, अनादि-साम्प्रत काय अपनी अपनी उत्कृष्ट प्रवेशासक्तिके प्राप्त होम्के पूर्व तक अमर्योके होय है। और सारि-साम्प्रत काय ऐसे जीर्णके होता है जिन्हेने उत्कृष्ट प्रवेशासक्ति करके अनुकृष्ट प्रवेशासक्ति की है। मात्र इस प्रकार जो अनुकृष्ट प्रवेशासक्ति प्राप्त होती है वह अन्तर्गुह्य काय तक ही पाई जाती है, क्योंकि क्षण हो जानेसे भाग इन प्रकृतियोंका सत्य नहीं पाया जाता, इसलिये इनकी अनुकृष्ट प्रवेशासक्तिका ब्रह्म और उत्कृष्ट काय अन्तर्गुह्य है। सम्पत्त और सम्पत्तिमिथ्यात्व का कमसे कम अन्तर्गुह्य काय तक और अधिकसे अधिक साधिक हो जपासठ सगर काय तक सत्य पाया जाता है इसलिये इनकी अनुकृष्ट प्रवेशासक्तिका ब्रह्म काय अन्तर्गुह्य और उत्कृष्ट काय साधिक हो जपासठ सगर काय तक है। सामान्यसे मोक्षनीयकी ब्रह्म प्रवेशासक्ति सुखसाम्प्रतके अन्तिम समयमें होती है, इसलिये इसकी ब्रह्म प्रवेशासक्तिका ब्रह्म और उत्कृष्ट काय एक समय और अत्रपन्थ प्रवेशासक्ति का अनादि-अनन्त और अनादि-साम्प्रत है। चतुर प्रकृतियोंकी अपवा मिथ्यात्व चारि अनादि प्रकृतियोंकी ब्रह्म प्रवेशासक्तिका ब्रह्म और उत्कृष्ट काय एक समय है जो अपने अपने ब्रह्म स्वामित्वके समय प्राप्त होती है। तब मिथ्यात्व सारक कथय और नो लोकश्रवणोंकी अत्रपन्थ प्रवेशासक्ति का अनादि-अनन्त और अनादि-साम्प्रत है, क्योंकि अमर्योके इसका सबैस सञ्ज्ञा पाया जाता है इसलिये ता अनादि-अमर्य विकल्प बन जाता है और अमर्योके अपन ब्रह्म स्वामित्वके पूर्व तक यह विमर्ष पाई जाती है इसलिये अनादि-साम्प्रत विकल्प बन जाता है। सम्पत्त और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी अत्रपन्थ प्रवेशासक्तिका ब्रह्म काय अन्तर्गुह्य और उत्कृष्ट काय साधिक

दो छयासठ सागरप्रमाण है सो इसका खुलासा अनुत्कृष्टके समान कर लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन विकल्प होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमेंसे प्रारम्भके दो विकल्पोंका खुलासा सुगम है। अब रहा सादि-सान्त विकल्प सो इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि विसंयोजनाके बाद इसकी संयोजना होनेपर इसका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालतरु और अधिकसे अधिक कुछकम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक सत्ता पाया जाता है। लोभसञ्चलनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके भी उक्त तीन विकल्प जानने चाहिये। मात्र इसके सादि-सान्त विकल्पका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि जघन्य प्रदेशविभक्ति होनेके बाद इसका अन्तर्मुहूर्त कालतक ही सत्त्व देखा जाता है। कालकी अपेक्षा मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी यह श्रेष्ठ प्ररूपणा है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर कालका विचार इसी प्रकार कर लेना चाहिये।

अन्तर—एक बार मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद पुनः वह अनन्त काल बाद ही प्राप्त होती है, इसलिए सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है। अथवा परिणामोंकी मुख्यतासे इसका जघन्य अन्तर-काल असंख्यत लोकप्रमाण भी बन जाता है। तथा उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, इसलिए इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मिथ्यात्व, मध्यकी आठ कपाय और पुरुषवेदके सिवा आठ नोकपायोंके विषयमें घटित कर लेना चाहिए। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अन्तरकालसम्बन्धी सब कथन उक्तप्रमाण ही है। पर विसंयोजना प्रकृति होनेसे इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण भी बन जाता है, इसलिए इतनी विशेषताका अलगसे निर्देश किया है। शेष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षणिके समय होती है, इसलिए उनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण है। तथा पुरुषवेद और चार सञ्चलन इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समयके लिए होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य प्रदेशविभक्ति दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इसकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंके विषयमें जान लेना चाहिए, क्योंकि इनकी क्षणिके अन्तिम समयमें ही जघन्य प्रदेशविभक्ति प्राप्त होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बन जानेसे वह उक्त प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर बन जानेसे वह उक्त प्रमाण है। लोभसञ्चलन की जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समयमात्र होकर भी अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। तथा सम्यक्त्वादि इन सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षणिके समय ही होती है, इसलिए

इसके अन्तरकालक नियम किया है। यह ओषधप्ररूपया है। आधेरासे गति आदि मार्गवालोंमें यह अन्तरकाल अपनी अपनी विरोधताको समझ कर घटित कर लेना चाहिए।

नाना जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यविषय—यह प्ररूपया भी जपम्य और अरुणके मेरुसे दो प्रकारकी है। नियम यह है कि जो उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले जीव हैं व अमुत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले नहीं हाथ और जो अमुत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले जीव हैं व उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले नहीं होत। यह अर्थपर है। इसके अनुसार यहाँ ओषध और चारों गतिवृत्तोंकी अपेक्षा मूल और उत्तर प्रवृत्तिवृत्त आत्मन्त्र सेकर मनुष्यविषयक विचार करत हुए ये तीन मनुष्य विषयक किन्तु गये हैं—१ कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले नहीं हैं, २ कदाचित् नामा जीव उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले नहीं हैं और एक जीव उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताला है तथा कदाचित् नामा जीव उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले नहीं हैं और नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले हैं। अमुत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताली अपेक्षा भी इसी प्रकार तीन मनुष्य कहल चाहिए। किन्तु इन मनुष्योंको कहते समय यहाँ निषेध किया है यहाँ विधि करनी चाहिए और यहाँ विधि की है यहाँ निषेध करना चाहिए। ये मनुष्य ओषधसे ता बन ही जाते हैं। सब ही चारों गतिवृत्तोंमें भी बन जाते हैं। मात्र सत्यपर्याप्तमनुष्य यह अन्तर मार्गवा है, इसलिये इनमें उत्कृष्ट और अमुत्कृष्टप्रदेराविमर्शिताली अपेक्षा प्रत्येकके आठ आठ मनुष्य होते हैं। जपम्य और अजपम्य प्रदेराविमर्शिताली अपेक्षा भी पूर्वोक्त प्रकारसे सब कलन कर लेना चाहिए। मात्र उत्कृष्ट और अमुत्कृष्टके स्थानमें जपम्य और अजपम्य पक्षकी धारणा करनी चाहिए।

मागाम्य—इस अनुबोद्धात्में उत्कृष्ट और अमुत्कृष्ट तथा जपम्य और अजपम्य प्रदेराविमर्शिताली अपेक्षा तीन किन्तु कितने मागप्रमाण हैं इत्यत्र विचार किया गया है। सामान्यसे सब जीव अनन्त हैं। इनमेंसे अधिकसे अधिक असंख्यात जीव एक साथ उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले बन कर सकते हैं इसलिये ब्रह्मीस प्रवृत्तिवृत्तोंके उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले जीव सब जीवोंके अन्तर्गत भगवत्प्रमाण और श्रेय अनन्त बहुमागप्रमाण जीव अमुत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिताले हात हैं। मात्र सत्यवत्त और सत्यमिच्छावत्तकी सत्तावाला जीव अधिकसे अधिक असंख्यात ही होते हैं। इसलिये इनकी अपेक्षा असंख्यातमें भगवत्प्रमाण उत्कृष्ट विमर्शिताले जीव और असंख्यात बहुमागप्रमाण अमुत्कृष्ट विमर्शिताले जीव होत हैं। सामान्य विवेकोंमें यह प्रत्यक्ष अधिकतम बन जाती है इसलिये इनमें ओषधके समान ज्ञाननेकी सूचना की है। मात्र गतिसम्बन्धी श्रेय अजपम्य भदोंमें अपने अपने संख्यातप्रमाणको दृष्टिमें रख कर इसका विवेचन करना चाहिए। जपम्य और अजपम्य प्रदेराविमर्शिताली अपेक्षा मागाम्यक विचार उत्कृष्टके समान ही है वह स्पष्ट ही है इसलिये इसकी अपेक्षा पृथक् विवेचन न करके अरुणके समान ज्ञानकी सूचना की है। सामान्य माहनीयकमेंकी अपेक्षा मागाम्यक विचार नहीं किया है यहाँ इतना विवेचन जानना चाहिए।

परिमाण—इस अनुवागद्वारेमें अरुणदि चारों प्रदेराविमर्शिताले जीवोंके परिमाणका विवेक किया गया है। सामान्यसे माहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेराविमर्शिता शुक्तिवर्मादिजि जीवोंके पञ्चान्वान हाती है और गत जीव असंख्यात हात हैं इसलिये माहनीयकी पृथक् प्रदेराविमर्शिताले जीवोंका परिमाण असंख्यात है। इसका सिद्धा श्रेय सब संसारी जीवोंके अनुभूत प्रदेराविमर्शिता हाती है, इसलिये उनका परिमाण अनन्त है। मिच्छावत्, पाद कपाव और आठ माहनीयकी अपेक्षा यह परिमाण इसी प्रकार बन जाता है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट और

अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवालोंका परिमाण भी उक्त प्रकारसे ज्ञान लेना चाहिए । पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति दर्शनमोहनीयकी क्षणिकताके समय तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षणिकताके पूर्व यथास्थान प्राप्त होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवालोंका परिमाण संख्यात और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवालोंका परिमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा असंख्यात तथा शेषकी अपेक्षा अनन्त होता है । यह ओघप्ररूपणा है । गतिमार्गणाके अवान्तर भेदोंमें स्वामित्वके अनुसार अपनी अपनी विशेषताको जानकर इसे घटित कर लेना चाहिए । जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा विचार करने पर सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा असंख्यात तथा शेषकी अपेक्षा अनन्त प्राप्त होता है । कारणका विचार स्वामित्वको देख कर लेना चाहिए । गतिमार्गणा आदिके अन्य भेदोंमें भी स्वामित्वका विचार कर सामान्यसे मोहनीय और सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह परिमाण ज्ञान लेना चाहिए । विशेष विचार मूलमें किया हो है ।

क्षेत्र—मोहनीयकी उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है । मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी यह क्षेत्र इसी प्रकार जानना चाहिए । मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । बात यह है कि इन प्रकृतियोंकी सत्तावाले कुन जीव ही असंख्यात हैं, इसलिए इनके चारों पदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । यह ओघ प्ररूपणा है । गति आदि अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता जानकर क्षेत्रका विचार कर लेना चाहिए ।

स्पर्शन—सामान्यसे मोहनीय और छत्तीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा अनुत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा शेष पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । कारणका विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए । यह ओघप्ररूपणा है । गति आदि अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको समझकर यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा काल—सामान्यसे मोहनीयकी तथा मिथ्यात्व, वारह कषाय और आठ नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति यदि नाना जीव युगपत् करें तो एक समय तद्र कर रहे हैं और निरन्तर करें तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक करते रहते हैं, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । तथा इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक साथ या लगातार करनेवाले जीव संख्यातसे अधिक नहीं होते, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय प्राप्त होता है । तथा इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है, क्योंकि इनकी सत्तावाले जीवोंका सर्वदा सद्भाव बना रहता है । यह ओघसे उत्कृष्ट प्ररूपणा है । जघन्य

[illegible]

नाना शीर्षोद्धी अपेक्षा अन्तर—आमाग्यन गाइनीय तथा उन्नत प्रतियोद्धी शस्त्र
 और अपेक्ष्य प्रदराविभिन्नयति काइ जीय म कर ता कयमे कम एक समयय आर अपिअम
 अपिअ अन्त अपेक्ष अन्तर पयय ह इगानिय इन सबधी उन्नत और अपेक्ष्य प्रदराविभिन्नय
 अपेक्ष्य अन्तर एक समय और उन्नत अन्तर अन्तमयन मान हाता है। तथा इन सबधी अमु
 लक्ष और अपेक्ष्य प्रदराविभिन्नयने जाय गर्वहा पाय जाल है यनिय इनही अपेक्षा अन्तर
 कालय निवेश किरा है। य आप प्रकयय ह। अपेक्ष्य माग कययमे अयनी अयनी विशेषताका
 जानकर यह अन्तरकाल यदिय कर लना आदिय।

समिकरण—आमाम्यतः माहृषिपुत्र कथं पठेत् इत्यत्रिपुत्र उक्तं सन्निधौ पठितं मही दत्ता ।
उत्तरं प्रकृतियोऽपि अपश्यत् यत् अपश्यत् ही गम्यते । इतः अनुवागद्वारम् यत् वतताया गम्यते
किं सिध्यात्वा आदि प्रकृतियोऽपि पठेत् पठेत् प्रकृतियुः उत्कृष्टं वा अपश्यत् प्रदेशात्कर्म रतं ह्युप
अपश्यत् प्रकृतियोऽपि सन्निधौ सत्ता पादः ज्ञानी इति आदि प्रकृतियोऽपि गता नही पादः
ज्ञानी । तथा त्रिपुत्र प्रकृतियोऽपि सत्ता पादः ज्ञानी इति उक्तं प्रदेशात्कर्म अपश्यत् अपश्यत् उत्कृष्टं वा
अपश्यत् अपश्यत् अस्ति मायाका त्रिपुत्र ह्युप दत्ता । न प्रकृतियुः अपश्यत् अपश्यत् अपश्यत्
यत् यत् प्रकृतियुः समाप्तं कियत् गता ।

भाष—सब कर्मों का सत्य आध्यात्मिक आधारही मुक्यत्वम हाथ ह बार लमी आकर
 इनही सत्य पाइ जाता है। यहाँ बरख दे कि यहाँ पर सामान्यतः मध्यमीय कम और कमकी
 उपर मूलविशेषी मत्वाजात कीशोक औपचारिक भाष ज्ञानन्य आदिप ।

अस्पृश्यदुस्व—मोड़नीयकी इच्छा प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे म्लोह है क्योंकि वह एक स्त्रव असंयमातसे अधिक नहीं हो सकत । तथा इनसे अनुत्पन्न प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तगुण हैं, क्योंकि अग्न्य सब संसारी जीवोंके वस्त्रें गुणस्थान तक भारतीय कर्मकी सत्ता पाई जाती है । इसी प्रकार भारतीयकी अग्न्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव सबसे स्त्रोह है क्योंकि एक साथ एक कालमें वे संख्यातसे अधिक नहीं हो सकत । तथा इनसे अस्पृश्यप्रव प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्तगुण हैं, क्योंकि अग्न्य सब संसारी जीवोंके वस्त्रें गुणस्थान तक भारतीयकर्मकी सत्ता पाई जाती है । यह अग्न्य प्रकल्पना है । अग्न्य मार्गकाष्ठोंमें अपनी अपनी विराजताका ध्यानमें रखकर यह अस्पृश्यदुस्व पठित कर सना चाहिये । यह स्वमाग्नसे भारतीय कर्मकी अपेक्षा अस्पृश्यदुस्व विचार है उत्तर धृतिर्योंकी अपेक्षा भी इसे मूलको देखकर जान सना चाहिये, क्योंकि मूलमें इसका इच्छापूर्व विस्तारके साथ विचार किया है ।

सुत्रगारविभक्ति—सुत्रगारविभक्तिमें सुत्रगार, अस्पतर, अवस्थित और अवज्ञप्रय इन चार पदोंका व्यवस्थान लेकर समुत्कीर्तना द्यामित्य एक जीवकी अपेक्षा अज्ञ एक जीवकी अपेक्षा अस्पतर, अज्ञ जीवोंकी अपेक्षा अज्ञविषय भागाभाग परिमाण अज्ञ स्वयं, अज्ञ अस्पतर, मात और अस्पतरद्वय इन तैल अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तर प्रकृतिपदों परास्परमें अज्ञापात्र विचार किया गया है।

पदनिक्षेप—भुजगारविशेषको पदनिक्षेप कहते हैं। इस अधिकारमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि, जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि तथा अवस्थितपद इन सबका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

वृद्धि—पदनिक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं। इस अधिकारमें यथासम्भव वृद्धि और हानिके अवान्तर भेदों तथा यथासम्भव अवक्तव्यविभक्ति और अवस्थितविभक्तिका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

सत्कर्मस्थान—मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मस्थान कितने हैं इसका निर्देश करते हुए मूलमें बतलाया है कि उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जिस प्रकार कथन किया है उसी प्रकार प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका भी कथन कर लेना चाहिये। फिर भी विशेषताका निर्देश करते हुए प्रकृतमें प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अधिकार उपयोगी बतलाये हैं।

भीनाभीनचूलिका

पहले उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका विस्तारके साथ विचार करते समय यह बतला आये हैं कि जो गुणितकर्मांशिक जीव उत्कर्षण द्वारा अधिकसे अधिक प्रदेशोंका सञ्चय करता है उसके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है और जो क्षणितकर्मांशिक जीव अपकर्षण द्वारा कर्मप्रदेशोंको कमसे कम कर देता है उसके जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए यहाँपर यह प्रश्न उठता है कि क्या सब कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण या अपकर्षण होना सम्भव है, बस इसी प्रश्नका समाधान करनेके लिए यह भीनाभीन नामक चूलिका अधिकार अलगसे कहा गया है। साथ ही इसमें सक्रमण और उदयकी अपेक्षा भी इसका विचार किया गया है। इस सबका विचार यहाँपर चार अधिकारोंका आश्रय लेकर किया गया है। वे अधिकार ये हैं—समुत्कीर्तना, प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तना—इस अधिकारमें अपकर्षण, उत्कर्षण, सक्रमण और उदयसे भीन और अभीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके अस्तित्वकी सूचना मात्र दी गई है। प्रकृतमें भीन शब्दका अर्थ रहित और अभीन शब्दका अर्थ सहित है। तदनुसार जिन कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण, उत्कर्षण, सक्रमण और उदय होना सम्भव नहीं है वे अपकर्ष, उत्कर्षण, सक्रमण और उदयसे भीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं। और जिन कर्मपरमाणुओंके ये अपकर्षण आदि सम्भव हैं वे इनसे अभीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं।

प्ररूपणा—इस अधिकारमें अपकर्षण आदिसे भीन और अभीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु कौन हैं इसका विस्तारके साथ विचार किया गया है। उसमें भी सर्वप्रथम अपकर्षणकी अपेक्षा विचार करते हुए बतलाया गया है कि उदयावलिके भीतर स्थित जितने कर्मपरमाणु हैं वे सब अपकर्षणसे भीनस्थितिवाले और शेष सब कर्मपरमाणु अपकर्षणसे अभीन स्थितिवाले हैं। तात्पर्य यह है कि उदयावलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण न होकर वे क्रमसे यथावस्थित रहते हुए निर्जराको प्राप्त होते हैं, इसलिए वे अपकर्षणके अयोग्य होनेके कारण अपकर्षणसे भीन

कोडाकोडी सागरपृथक्त्वप्रमाण शेष है। अर्थात् उक्त शेष स्थितिको छोड़कर वाकी की कर्मस्थिति के बराबर काल वीत चुका है तो उन कर्म परमाणुओं का आवाधाप्रमाण अतिस्थापना को छोड़कर अपनी-अपनी योग्य शेष रही शक्तिस्थितिप्रमाण स्थिति तक उत्कर्षण हाकर निक्षेप होना सम्भव है।

यहाँ यह जो एक समय अधिक उदयावलि की अन्तिम स्थितिको माध्यम बनाकर उत्कर्षण-का विचार किया जा रहा है सो उस स्थितिमें किस निषेकके कर्मपरमाणु हैं और किसके नहीं हैं इसका विचार करते हुए बतलाया है कि जिसका बन्ध किये हुए एक समय, दो समय और तीन समय आदिके क्रमसे एक आवलि काल व्यतीत हुआ है उन सब निषेकोंके कर्मपरमाणु विवक्षित स्थितिमें नहीं पाये जाते। कारण यह है कि बन्धके बाद एक आवलिकाल तक न्यूनतम बन्धका अपकर्षण नहीं होता और आवाधा कालके भीतर निषेक रचना नहीं होती, अतः विवक्षित स्थितिके पूर्व एक आवलि काल तक बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मपरमाणुओंका उस स्थितिमें नहीं पाया जाना स्वाभाविक है। हा इस एक आवलिसे पूर्व बन्धको प्राप्त हुए समयप्रवर्द्धोंके कर्म परमाणु अपकर्षण होकर बहा पाये जाते हैं इसमें कोई बाधा नहीं आती। फिर भी ऐसे कर्म-परमाणुओंका यदि उत्कर्षण हो तो उनका निक्षेप एक समय अधिक एक आवलिकर्म कर्मस्थितिके अन्ततक हो सकता है। मात्र इनका निक्षेप तत्काल बंधनेवाले कर्मके आवाधा कालके ऊपर ही होगा यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए। यह दूसरी प्ररूपणा है जो नवकबन्धकी मुख्यतासे की गई है। पहली प्ररूपणा प्राचीन सत्तामें स्थित कर्मों की मुख्यतासे की गई थी, इसलिए ये दोनों प्ररूपणाएँ स्वतंत्र होनेसे इनका मूलमे अलग अलग विवेचन किया गया है।

यहा दूसरी प्ररूपणाके समय अवस्तुविकल्पोका भी निर्देश किया गया है। किन्तु प्रथम प्ररूपणाके समय उनका निर्देश नहीं किया गया है, इसलिए यहा यह शंका होती है कि क्या प्रथम प्ररूपणाकी अपेक्षा एक भी अवस्तु विकल्प नहीं होता सो इसका समाधान यह है कि अवस्तु-विकल्प तो वहाँ भी सम्भव है। अर्थात् विवक्षित स्थिति (एक सनय अधिक उदयावलि की अन्तिम स्थिति) में इससे पूर्व उदयावलिप्रमाण निषेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता फिर भी यह बात बिना कहे ही ज्ञात हो जाती है, इसलिए प्रथम प्ररूपणाके समय इन अवस्तु विकल्पोका निर्देश नहीं किया है। विशेष खुलासा मूलमें यथास्थान किया ही है, इसलिए इसे वहासे विशेष रूपसे समझ लेना चाहिए।

उदयावलिके ऊपर जो प्रथम स्थिति है उसकी विवक्षासे यह प्ररूपणा की गई है। किन्तु इसके ऊपरकी स्थितिकी अपेक्षा प्ररूपणा करने पर अवस्तुविकल्प एक बढ़ जाता है, क्योंकि उदयावलिके भीतरकी सब स्थितियोंमें स्थित निषेकोंके कर्मपरमाणु तो इसमें पाये ही नहीं जाते, साथ ही उससे उपरितन स्थितिमें स्थित निषेकके कर्मपरमाणु भी नहीं पाये जाते, क्योंकि इन निषेकोंमें स्थित कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति इस विवक्षित स्थितिके पूर्व ही समाप्त हो जाती है। तथा भीनस्थितिविकल्प एक कम होता है, क्योंकि आवाधामें एक समयकी कमी हो जानेसे भीनस्थितिविकल्पोंमें भी एक समयकी कमी हो गई है। मात्र इसकी अपेक्षा अमीन स्थितियोंमें भेद नहीं है। यह प्रथम प्ररूपणाकी अपेक्षा विचार है। इसी प्रकार दूसरी प्ररूपणाको ध्यानमें रखकर विचार कर लेना चाहिए। तथा आगे भी इसी प्रकार विचार कर किस निषेकके कितने कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे भीनस्थिति हैं और कितने कर्मपरमाणु अमीनस्थिति हैं। साथ ही उनमें अवस्तुविकल्प कितने हैं और जिनका उत्कर्षण हो सकता है उनका वह कहां तक होता है इत्यादि

वालोंका पूर्वोक्त प्रत्यक्ष और उत्कर्षण आदिके नियमोंको ध्यानमें रखकर विचार कर लेना चाहिए। मूलमें इसका विचारसे विचार किया ही है, इसलिये वहाँ विशेष नहीं लिखा जा रहा है।

संक्रमणकी अपेक्षा मीन और अमीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका विचार करते हुए जो कुछ कहा गया है उसका भाव यह है कि ब्रह्मावस्थिके भीतर प्रविष्ट हुए अतिन निरपेक्ष हैं उनके कर्मपरमाणु संक्रमणसे मीनस्थितिवाले और अमीनस्थितिवाले हैं। मात्र मृत्युतन बन्धका बन्धावस्थि अतएव अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण आदि नहीं होता इतनी विशेषता यहाँ और समझनी चाहिए।

अबकी अपेक्षा मीन और अमीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका विचार करते हुये जो कुछ कहा गया है उसका भाव यह है कि जिस कर्मने अपना पक्ष है किया है वह वरयसे मीनस्थिति वाता है और जो पक्ष कर्म ब्रह्मसे अमीन स्थितिवाले है।

स्वामित्व—यहाँ तक प्रवृत्ति विशेषका आत्मबल क्षिप बिना सामान्यसे यह बतलाया गया है कि जिस स्थितिमें स्थिति मिलने कर्म परमाणु अपकर्षण आदिसे मीनस्थितिवाले और अमीन स्थितिवाले हैं। आगे मिथ्यात्व आदि प्रत्येक कर्मकी अपेक्षा मीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अपम्य और अअपम्य ऐसे चार भेद करके उनके स्वामित्वका विचार करके इस प्रकारको समाप्त किया गया है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि अपकर्षण आदिकी अपेक्षा उत्कृष्ट मीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका स्वामी गुणितकर्मात्मिक और अपकर्षण आदिकी अपेक्षा अपम्य मीनस्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका स्वामी क्षपितकर्मात्मिक और होता है। इसमें वहाँ विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है।

अस्पृहकृत्य—इसमें मिथ्यात्व आदि प्रत्येक कर्मकी अपेक्षा अपकर्षण आदिसे मीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके अस्पृहकृत्यका विचार किया गया है।

स्थितिगच्छिका

पहले उत्कृष्टादिके ऐसेसे प्रदेशादिस्थिति का विस्तारसे विचार कर आये हैं। स्वयं ही अपकर्षण आदिकी अपेक्षा मीन और अमीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका भी विचार कर आये हैं। किन्तु अभी तक उत्कृष्टकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवाले आदि कर्मपरमाणुओंका विचार नहीं किया गया है, इसलिये इसी विषयका विस्तारसे विचार करनेके लिए स्थितिग नामक चर्चित्व आया है। इसमें जिस अधिकारोंका आश्रय लेकर उत्कृष्ट स्थितिवाले आदिकी विचार किया गया है व अधिकार ये हैं—समुत्कीर्तन स्वामित्व और अस्पृहकृत्य।

समुत्कीर्तन—इस अधिकारमें उत्कृष्ट स्थितिवाले, निरपेक्षस्थितिवाले यथाविवेकस्थितिवाले और अविस्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं यह स्वीकार किया गया है। जो कर्मपरमाणु तब समयमें अविस्थितिमें दृष्टिगोचर होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मपरमाणु हैं। यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिसे अविस्थिति भी गई है। एक समयप्रवृत्तकी विविध स्थितिमें किन्तु कर्मपरमाणु ब्रह्मके समय अपस्थितिमें दृष्टिगोचर होते हैं उन सबकी उत्कृष्ट स्थितिवाले संज्ञा है यह एक कथनका तात्पर्य है। जो कर्मपरमाणु ब्रह्मके समय जिस स्थितिमें निश्चित होते हैं अपकर्षण और उत्कर्षण होकर भी ब्रह्म आत्ममें वे यदि कभी स्थितिमें स्थित रहते हैं तो उनकी निरपेक्षस्थितिवाले संज्ञा

है। जो कर्मपरमाणु बन्धके समय जिस स्थितिमें निक्षिप्त होते हैं वे यदि उत्कर्षण या अपकर्षण हुए बिना उदयकालमें उसी स्थितिमें रहते हैं तो उनकी यथानिपेक्षस्थितिप्राप्त संज्ञा है। तथा बन्धके समय जो कर्मपरमाणु जिस निपेक्षस्थितिमें प्राप्त हुए हैं वे उदयके समय यदि उसी निपेक्षस्थितिमें न रहकर जहाँ कहीं दिखलाई देते हैं तो उनकी उदयस्थितिप्राप्त संज्ञा है। इसप्रकार उत्कृष्टस्थितिप्राप्त आदिके भेदसे ये कर्मपरमाणु चार प्रकारके हैं यह निश्चित होता है।

स्वामित्व—इस अधिकारमें मिथ्यात्व आदि अवान्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उक्त चार प्रकारके कर्मपरमाणुओंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चार भेद करके उनके स्वामित्वका विचार किया गया है।

अल्पबहुत्व—इस अधिकारमें उक्त सब भेदोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

इसप्रकार इतना कथन करनेके बाद चूलिका सहित प्रदेशविभक्ति अधिकार समाप्त होता है।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
एक बीघकी जफेद काग	१-२५	एक प्रहसिरोकी अपेक्षा जफेद-प्रहसक	
मिथ्यात्वकी उत्पत्ति और अनुपपत्ति प्रवेश		मायाप्रपञ्चा विचार	५
विश्लेषका काल	२	परिमाण	४०-४३
अनुपपत्ति प्रवेशविश्लेषके कालका अन्त्य समये		एक प्रहसिरोकी अपेक्षा उत्पत्ति-अनुपपत्ति	
निर्देश	३	परिमाणका विचार	५
ऐय कर्मोंके कालका निर्देश	४	एक प्रहसिरोकी अपेक्षा अन्त्य और प्रहसक	
हस्तकर्म और हस्तमिथ्यात्वके कालमें		परिमाणका निर्देश	४३
विश्लेषका निर्देश	५	क्षेत्रज्ञ निर्देश	४४
एक प्रहसिरोकी अन्त्य कालके जाननेकी सूचनामात्र	६	उत्पत्ति और अनुपपत्ति क्षेत्रज्ञ निर्देश	४५
उत्पत्ति-अन्त्यके अनुसार उत्पत्ति और अनुपपत्ति		अन्त्य और अन्त्यक्षेत्रज्ञ निर्देश	४६
कालका निर्देश	७	स्वर्गलोक कर्म	४८-५१
अन्त्य और अन्त्य कालका निर्देश	१७	उत्पत्ति और अनुपपत्ति स्वर्गलोक कर्म	५५
एक बीघकी जफेद काग	२५-३७	अन्त्य और अन्त्य स्वर्गलोक कर्म	५७
मिथ्यात्वकी उत्पत्ति प्रवेशविश्लेषका अन्तर	२५	नानाबीघोंकी अपेक्षा काल	५०-५३
ऐय कर्मोंके अन्तरके जाननेकी सूचना	२६	उत्पत्ति अनुपपत्ति कालका कर्म	५
हस्तकर्म और हस्तमिथ्यात्वके अन्तरके विषयमें		अन्त्य और अन्त्य कालका कर्म	५३
विश्लेषका निर्देश	२६	मायाबीघोंकी अपेक्षा अन्तर	५३-५४
एक प्रहसिरोकी अन्तरकागके जाननेकी		उत्पत्ति और अनुपपत्ति अन्तरका कर्म	५६
सूचनामात्र	२७	अन्त्य और अन्त्य अन्तरका कर्म	५४
उत्पत्ति-अन्त्यके अनुसार उत्पत्ति और अनुपपत्ति		समिपकर्म कर्म	५४-५५
अन्तरका निर्देश	२७	उत्पत्ति समिपकर्म कर्म	५५
अन्त्य और अन्त्य अन्तरका निर्देश	३२	अन्त्य समिपकर्म कर्म	५९
नाना बीघोंकी अपेक्षा मन्त्रविषय	३०-३६	अस्पृश्यत्वका कर्म	५९-६३
वृत्तिकारकी सूचनामात्र	३७	श्रोत्रोत्पत्ति प्रवेश अस्पृश्यत्व कर्म	७४
एक प्रहसिरोकी अपेक्षा उत्पत्ति-अनुपपत्ति		नरकगर्भमें उत्पत्ति प्रवेश अस्पृश्यत्व कर्म	८२
प्रवेशविश्लेषका मन्त्रविषय	३७	ऐय मतिरोमें उत्पत्ति प्रवेश अस्पृश्यत्वके	
एक प्रहसिरोकी अपेक्षा अन्त्य-प्रहसक प्रवेश		जाननेकी सूचना	६
विश्लेषका मन्त्रविषय	३८	एकेमिषोमें उत्पत्ति प्रवेश अस्पृश्यत्वका कर्म	८१
मायाप्रपञ्चा	३८-४०	श्रोत्रोत्पत्ति अन्त्य प्रवेश अस्पृश्यत्वका अन्तर	
एक प्रहसिरोकी अपेक्षा उत्पत्ति-अनुपपत्ति		निर्देश	८३
मायाप्रपञ्चा विचार	३८	नरकगर्भमें अन्त्य प्रवेश अस्पृश्यत्वका कर्म	८१६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शेष गतियोंमें जघन्य प्रदेश अल्पबहुत्वके जाननेकी सूचना	१२३	भागाभाग	२११
मनुष्यगतियोंमें ओषधके समान जाननेकी विशेष सूचना	१२३	परिमाण	२१६
एकेन्द्रियोंमें जघन्य प्रदेश अल्पबहुत्वका कथन	१२४	क्षेत्र	२१७
भुजगार विभक्तिका कथन	१३३-१७१	स्पर्शन	२१८
भुजगार विभक्तिके तेरह अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	१३३	नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२२२
समुत्कीर्तना	१३३	नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२२६
स्वामित्व	१३४	भाव	२२६
एक जीवकी अपेक्षा काल	१३६	अल्पबहुत्व	२२६
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	१४२	सत्कर्मस्थान	२३५-२३५
नानाजीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	१४६	मङ्गलाचरण	२३४
भागाभाग	१५०	सत्कर्मस्थानोंका कथन	२३४
परिमाण	१५३	तीन अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	२३४
क्षेत्र	१५५	प्ररूपणा	२३४
स्पर्शन	१५६	प्रमाण	२३५
नानाजीवोंकी अपेक्षा काल	१६३	अल्पबहुत्व	२३५
नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर	१६६	भीनाभीनचूलिका	२३५-२६६
भाव	१८६	मङ्गलाचरण	२३५
अल्पबहुत्व	१६६	भीन और अभीन पदकी विशेष व्याख्या	
पदनिक्षेप	१७१-१८७	जाननेकी सूचना	२३५
पदनिक्षेप और वृद्धिका स्वरूपनिर्देश	१७१	विभाषा शब्दका अर्थ	२३६
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वारोंके नाम	१७२	भीनाभीन अधिकारके कथनकी सार्थकता	२३६
उत्कृष्ट समुत्कीर्तना	१७२	यह अधिकार चूलिका क्यों कहा गया है इसका निर्देश	२३६
जघन्य समुत्कीर्तनाकी सूचनामात्र	१७३	प्रकृतमें चार अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	२३७
उत्कृष्ट स्वामित्व	१७३	समुत्कीर्तना पदका अर्थ	२३७
जघन्य स्वामित्व	१८४	समुत्कीर्तना अनुयोगद्वार	२३७-२३८
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१८५	अपकर्षण आदिकी अपेक्षा भीनस्थितिक	
जघन्य अल्पबहुत्व	१८६	कर्मोंका अस्तित्व कथन	२३७
वृद्धिविभक्ति कथन	१८७-२३४	विशेष खुलासा	२३७
तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	१८७	प्ररूपणा अनुयोगद्वार	२३७-२७५
समुत्कीर्तना	१८७	कौन कर्म अपकर्षणसे भीनस्थितिक हैं इसका निर्देश	२३६
स्वामित्व	१८६	अपकर्षणसे अभीनस्थितिक कर्मोंका व्याख्यान	२४०
एक जीवकी अपेक्षा काल	१८३	कौन कर्म उत्कर्षणसे भीनस्थितिक है इसका निर्देश	२४२
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२०१	कौन कर्म उत्कर्षणसे अभीनस्थितिक हैं इसका निर्देश	२४७
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	२०८		

विषय	पृष्ठ
एक समय अचिक उद्वाचसिद्धी अन्तिम स्थितिमें नवदम्पत्यके बीच कर्मपरमाप्तु नहीं है इच्छा निर्देश	२३१
उठी स्थितिमें बीच परमाप्तु है उच्छा निर्देश	२३२
उठ स्थितिमें नवदम्पत्यके बीच कर्मपरमाप्तु है उनका किन्ना उत्कर्ष हो उच्छा है इच्छा निर्देश	२३३
दो समय अचिक उद्वाचसिद्धी अन्तिम स्थितिकी अपेक्षा कथन	२३८
दोनों समय अचिक आरुतिसे लेकर आवाचसिद्ध अन्तिम उठ की स्थितिमें की अपेक्षा बान्नेकी कथना	२४
एक समय कम आरुतिसे न्यून आवाचसिद्ध अन्तिम स्थितिमें कितने विज्ञान नहीं होते हैं और कितने विज्ञान होते हैं इच्छा निर्देश	२४१
दो होते हैं उनमें बीच उत्कर्षवले मीन-स्थिति है और बीच अमीनस्थिति है इच्छा निर्देश	२४३
एक समय कम आरुतिसे न्यून आवाचसिद्ध अन्तिम स्थितिमें विज्ञानका कथन करके आनेकी एक समय अचिक स्थितिमें विज्ञानका निर्देश व उत्कर्षवले मीन-मीन विचार	२४६
उससे एक समय अचिक स्थिति की अपेक्षा पूर्वोक्त प्रकारसे विचार	१
एक समय अचिक कथन आवाचसिद्ध उत्कर्षवले मीन-स्थिति निर्देश	२४७
दो समय अचिक कथन आवाचसिद्ध उत्कर्षवले मीन-स्थिति निर्देश	२४९
संक्रमणसे मीनस्थिति और अमीनस्थिति कर्मप्रदेशोंका निर्देश	२४९
उद्वाचसे मीनस्थिति और अमीनस्थिति कर्म प्रदेशोंका निर्देश	२४८

विषय	पृष्ठ
पूर्वोक्त प्रत्येक मीनस्थिति कर्म उत्कर्षवले अपेक्षा की अपेक्षा बार प्रकारसे होते हैं इच्छा निर्देश	२४९
स्वामित्व	२४९-२५१
मिथ्यात्वके अपेक्षावधि बारोकी अपेक्षा मीन-स्थिति कर्मों के उत्कर्ष स्वामी का निर्देश	२५१
सम्पत्तकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व निर्देश	२५४
सम्पत्तिमिथ्यात्वकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व निर्देश	२५७
अनन्तानुपत्तीकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व निर्देश	२५९
यन्त्रकी आठ कवाचोंकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	२६४
कोरल-लक्ष्मीकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
मान-लक्ष्मीकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
मावा-लक्ष्मीकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
लोम-लक्ष्मीकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
अविश्वकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
गुरुवेदकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
ननु लक्ष्मीकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
आठ कवाचोंकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन	१
मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन स्वामित्व कथन	११९
सम्पत्तकी अपेक्षा कथन स्वामित्व कथन	१२
सम्पत्तिमिथ्यात्वका कथन स्वामित्व सम्पत्तके समान बान्नेकी कथना	१२२
आठ कवाच बार लक्ष्मी गुरुवेद, हास्य, उषि, मय और ज्ञान्याकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	१२९
अनन्तानुपत्तीकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	१२८
ननु लक्ष्मीकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	१२४
अविश्वकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	१२५
आरुति-शोककी अपेक्षा कथन स्वामित्व	१३
अस्वच्छत्व	१३६-१३६
मिथ्यात्ववधि प्रवृत्तिमें बारोकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व	१३९
कथन मीनस्थिति अन्तिमपुत्र	१३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्थितिगचूलिका	३६६-४५१	नपु सकवेदके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि	
मङ्गलाचरण	३६६	द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	४२३
स्थितिग पदकी विभाषाकी सूचना	३६६	जघन्य स्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामित्वके जाननेकी	
स्थितिग पदका अर्थ	३६६	सूचना	४२३
यह अधिकार भी चूलिका है इसका निर्देश	३६७	सब कमोंके जघन्य अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यके	
प्रकृतोपयोगी तीन अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	३६७	स्वामीका निर्देश	४२४
तीनों अनुयोगद्वारोंका लक्षणनिर्देश	३६७	मिथ्यात्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदय-	
समुत्कीर्तना	३६६-३७४	स्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामीका निर्देश	४२४
स्थितिप्राप्त द्रव्य चार प्रकारका है इसका		मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामी-	
निर्देश	३६७	का निर्देश	४३०
उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूप कथन	३६८	सम्यक्त्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामी-	
निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूपनिर्देश	३७०	को मिथ्यात्वके समान जाननेकी सूचना,	
यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूपनिर्देश	३०१	साथ ही कुछ विशेषताका निर्देश	४३५
उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूपनिर्देश	३७२	सम्यक्त्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थिति-	
प्रत्येकके उत्कृष्टादि चार भेदोंका निर्देश	३७३	प्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४३६
स्वामित्व	३७४-४४५	सम्यग्मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त	
मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि		द्रव्यका स्वामी सम्यक्त्वके समान है इसका	
द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	३७४	अपनी विशेषताके साथ निर्देश	४३७
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अग्रस्थिति-		सम्यग्मिथ्यात्वके निषेक और उदयस्थितिप्राप्त	
प्राप्त आदि द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	४००	द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४३८
अनन्तानुबन्धीचतुष्क, आठ कषाय और छह		अनन्तानुबन्धियोंके निषेक और यथानिषेक-	
नोकषायोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान		स्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४६८
जाननेकी सूचना	४०३	अनन्तानुबन्धियोंके उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके	
आठ कषायोंके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके		जघन्य स्वामीका निर्देश	४४०
स्वामित्वमें विशेषताका निर्देश	४०३	बारह कषायोंके निषेक और उदयस्थितिप्राप्त	
छह नोकषायोंके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके		द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४४२
स्वामित्वमें विशेषताका निर्देश	४०४	बारह कषायोंके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके	
क्रोधसञ्चलनके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि		जघन्य स्वामीका निर्देश	४४२
द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	४०५	पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और जुगुप्साके विषय-	
सञ्चलनमान, माया और लोभके विषयमें		में बारह कषायोंके समान जाननेकी सूचना	४४४
सञ्चलन क्रोधके समान जाननेकी सूचना	४१६	स्त्रीवेद, नपु सकवेद, अरति और शोकके यथा-	
पुरुषवेदके चारों स्थितिप्राप्त द्रव्यके उत्कृष्ट		निषेकस्थितिप्राप्त आदि द्रव्यके जघन्य	
स्वामित्वका निर्देश	४२०	स्वामीका निर्देश	४४५
स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि द्रव्यके		अल्पबहुत्व	४४६-४५१
स्वामित्वका निर्देश	४२०	सब कमोंके चारों उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तोंके	
		अल्पबहुत्वका निर्देश	४४६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अपन अक्षयवृत्तके बान्धवकी सूचना	४४७	अनन्यानुकम्पियोंके चारों अपन स्थितिमात्रोंके अपनवृत्तका निर्देश	४४८
मित्राक्षके चारों अपन स्थितिमात्रोंके अपनवृत्तका निर्देश	४४७	अपने, ननु लक्ष्मण अरु, और शोकके चारों अपन स्थितिमात्रोंका अपनवृत्त अनन्यानुकम्पियोंके समान है इत्यादि निर्देश	४४९
अपन, अपनमित्राक्ष, चारों अपन पुरुषके हाथ रति, मन और श्रुत्याके चारों अपन स्थितिमात्रोंका अपनवृत्त मित्राक्षके समान है इसकी सूचना	४४८		

कसायपाहुडस्स

प दे स वि ह ती

पंचमो अत्थाहियारो



सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिमुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइहं

क सा य पा हु ङं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

पदेविहत्ती णाम पंचमो अत्थाहियारो



❀ कालो ।

§ १. कालो उच्चदि ति भण्णिदं होदि ।

❀ काल ।

§ १ कालका कथन करते हैं यह वक्त कथनका तात्पर्य है ।

ॐ मिथुनस्तस्य वक्रस्तपदेसविहसिभो केवचिरं काकायो होदि ।

§ २. सुगमं ।

ॐ अहपशुवस्तेयोगसमभो ।

§ ३ सधपशुवसिनेरहपस्त वक्रस्तावभस्त चरिभसमए च वक्रस्तपदेस सर्वकम्पसुवशंभावो ।

ॐ अशुक्रस्तपदेसविहसिभो केवचिरं काकायो होदि ।

§ ४ सुगमं ।

ॐ अहपशुवस्तेष्व अथतकाकमससेत्वा योगकापरिपट्टा ।

§ ५ चतुर्गदिभिर्गोदे पशुष एसो काकभिरैसा । जिह्वभिर्गोदे पुन पशुष मजा दिमो अपम्भवसिहो मखादिभो सपम्भवसिहो च होदि, अस्त्यतसमावागशुक्रस्त वम्बाशुवनचीत्रो । मज्जुक्रस्तपदमपिहसीए अर्णवकास्यवद्वाणं कर्णं पट्टद ? न, वक्रस्तपदेसद्वाणप्यहुरि ज्ञान महण्णद्वाणं त्रि पदेसु मन्ततेसु द्वाणेषु अर्णवकास्यवद्वाणं पदि विरोहामावादो ।

ॐ मिथ्यात्वकी वस्तुए प्रदेशविभक्तिकाखे जीवका कितना कास है ?

§ २. यह सूत्र सुगम है ।

ॐ अपन्य और वस्तुए कास एक समय है ।

§ ३ क्योंकि साठवीं प्रश्निकाके मारकीके वस्तुए आयुके अन्तिम समयमें ही वस्तुए प्रदेशसाठमें वस्तुए होवा है ।

ॐ अनुवस्तुए प्रदेशविभक्तिका कितना कास है ।

§ ४ यह सूत्र सुगम है ।

ॐ नपन्य और वस्तुए अनन्त कास है जो असंस्थाव पुत्रस परिपर्वनोंक बराबर है ।

§ ५ चतुर्गदि मिथ्या जीवकी अपेक्षा कासका यह निर्देश दिया है । किन्तु मिथ्या जीवकी प्रदेशों को अन्तर्दि-अनन्त और अन्तर्दि-सांख्य कास होता है, क्योंकि जिस जीवमें असमायका नहीं प्राप्त किया है उनके वस्तुए इन्धकी प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

शंका—अनुवस्तुए प्रदेशविभक्तिका अनन्त कासवक आवश्यक कैसे बन सकता है ?

समाधान—यहाँ क्योंकि वस्तुए प्रदेशस्थानसे लेकर अनन्त प्रदेशस्थान तक को अनन्त स्थान है जन्में अनन्त कास वक आवश्यक होवेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

❀ अण्णोवदेसो जहण्णेण असंखेज्जा लोगा त्ति ।

§ ६. सव्वे जीवपरिणामा असंखेज्जलोगमेत्ता चेव णाणंता, तहोवदेसाभावादो । तत्थुक्कस्सपदेससंतकम्मकारणपरिणामकलावं मोत्तूण सेसपरिणामहाणेसु अवट्ठाण-कालो जह० असंखेज्जलोगमेत्तो चेव तम्हा अणुक्कस्सपदेसकालो जह० असंखेज्जलोग-मेत्तो त्ति इच्छियव्वो । ण च पदेसुत्तरादिकमेण संतकम्महाणेसु परिव्वभमणणियमो अत्थि, एकसराहेण अणताणि हाणाणि उल्लघियूण वि परिव्वभमणुवलंभादो' । एदं केसिं पि आइरियाणं वक्खाणंतरं । एदेसु दोसु उवदेसेसु एक्केणेव सच्चेण होदव्वं, अण्णोण्णविरुद्धत्तादो । तदो एत्थ जाणिदूण वत्तव्वं ।

❀ अधवा खवगं पडुच्च वासपुधत्तं ।

§ ७. गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सत्तमाए पुढवीए उक्कस्सपदेसं करिय पुणो समयाविरोहेण एइंदिससु मणुस्सेसु च उववज्जिय अंतोमुहत्तव्वहिअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय णिव्वुइं गयम्मि अणुक्कस्सदव्वस्स वासपुधत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

❀ अन्य उपदेशके अनुसार जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ६ कारण कि जीवोंके सब परिणाम असंख्यात लोकमात्र ही होते हैं, अनन्त नहीं होते, क्योंकि इस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता । उनमेंसे उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके कारणभूत परिणामकलापको छोड़कर शेष परिणामोंमें अवस्थित रहनेका जघन्य काल असंख्यात लोक-प्रमाण ही है, इसलिए अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण है ऐसा स्वीकार करना चाहिए । और उत्तरोत्तर एक एक प्रदेशके अधिकके क्रमसे सत्कर्मस्थानोंमें परिभ्रमण करनेका कोई नियम नहीं है, क्योंकि एक साथ अनन्त स्थानोंको उत्तर्जन करके भी परिभ्रमण पाया जाता है । यह किन्हीं आचार्योंका व्याख्यानान्तर है सो इन दो उपदेशोंमेंसे एक उपदेश ही सत्य होना चाहिए, क्योंकि ये दोनों उपदेश परस्परमें विरोधको लिये हुए हैं, इसलिए यहाँपर जानकर व्याख्यान करना चाहिए ।

❀ अथवा क्षपककी अपेक्षा वर्षपृथक्त्वप्रमाण काल है ।

§ ७ क्योंकि जो जीव गुणितकर्माशिककी विधिसे आकर सातवीं पृथिवीमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मको करके पुनः यथाशास्त्र एकेन्द्रियोंमें और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कालके द्वारा सयमको ग्रहणकर मुक्तिको प्राप्त होता है उसके अनुत्कृष्ट द्रव्यका वर्ष पृथक्त्वप्रमाण काल उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह तो स्पष्ट ही है, क्योंकि गुणितकर्माशिकविधिसे आकर जो अन्तमें उत्कृष्ट आयुके साथ दूसरी बार सातवें नरकमें उत्पन्न होता है उसके अन्तिम समयमें ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति देखी जाती है । इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके कालके विषयमें दो उपदेश पाये

⊙ एष सेसायं कस्मात् पातृष्य योदध्व ।

१८ तं महा —अथकसाय-सप्तभौकसायानं मिच्छत्सर्मगो, अहण्युक्तसफासेरि उक्तसायुक्तसद्वन्विसर्पि ततो येदाभावादो । अर्थात्पुनर्भविष्यत्कस्तु वि मिच्छत्सर्मगो येव । नगरि अथुक्तस्त अहण्येण अतोमुत्तं, अर्थात्पुनर्भविष्यत्कस्तु विसर्गोऽयं पुनो संश्रुतो होय्य अतामुत्तुयेण विसर्गोऽयं तदुत्तंभादो । चतुसं० पुरित० दह० अहण्यु० एगस० । अथुक्त० अणादि-अपत्त० अणादि-सपत्त० सादि-सपत्त० । जो सो सादि-सपत्त० तस्त अहण्युक्त अतो० । इति० सक्त०

जाते हैं। एक वर्षेरात अमुसार यह अमृत कात प्रमास्य वपलाभा है। इसकी व्याख्या करते हुए वीरसेन स्थायीये आशिका है उसका भाव यह है कि निम्न निम्न जीव हो प्रकारके होते हैं—एक वे आ अथक म तो निगोहसे निकले हैं और न निकलेगी। इसकी अपेक्षा या मिच्छात्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका कात अमृत-अमृत है। जो आ निम्न निम्नसे निकलकर क्रमसे अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अमृत कर देते हैं उनकी अपेक्षा अमृत-सप्त कस्त है। पर वृत्तिसूत्रमें इन दोनों प्रकारके कातोंका प्रत्यक्ष न कर इतर निगाह जीवोंकी अपेक्षा कातका विचार किया गया है। कारण यह है कि एक बार मिच्छात्वकी उक्त प्रवेशविमर्शिका करके आ क्रमसे इतर निगाहमें चले जाते हैं चले वहासे निकलकर पुनः उक्त प्रवेशविमर्शिका प्रप्त करनेमें अमृत कस्त लगता है, इसलिये वृत्तिसूत्रमें मिच्छात्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अमृत और उक्त अमृत कात कहा है। वह एक वपरा है। किन्तु एक दूसरा वपरा भी मिलता है। इसके अनुसार मिच्छात्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अमृत कात अमृतप्रमास्य न प्राप्त होकर अमृतकात लोकप्रमास्य बन जाता है। इन आचार्योंके मतसे इस वपराके कारणका निर्देश करत हुए वीरसेन आचार्य लिखते हैं कि जीवोंके कुछ परियाम अमृतकात काकप्रमास्य ही उक्त होवे हैं और सब प्रवेशात्मकस्वानामि जीव क्रमसे ही प्रप्त होता है ऐसा कोई नियम नहीं है अतः अमृत कात अमृतकात लोकप्रमास्य बननेमें कोई बाधा नहीं आती। अनुकूलके अमृत कातके विषयमें ऐसा वपरा है। वह कह सकना कठिन है कि इसमेंसे तीन वपरा सब है, इसलिये यहाँ चालेका समझ किया गया है। यह समझ है कि शुद्धितकर्मार्थिक जीव सातवें भरके अमृतमें उक्त प्रवेशात्मक करके और चाले निकलकर क्रमसे अनुकूल होकर वर्षपूर्वक कातके भीतर ओहमीयका उपपन्न कर दे। इसलिये यहाँ मिच्छात्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अमृत कात वर्षपूर्वकत्वप्रमास्य भी कहा है।

⊙ इसी प्रकार जोन कर्मोंका भानकर से जाया पादिप ।

१८ सुत्रासा इस प्रकार है—आठ कथा और सात ताकपायोंका भङ्ग मिच्छात्वके समान है क्योंकि अमृत और उक्त कातकी अपेक्षा तथा उक्त और अनुकूल इत्यविरोधकी अपेक्षा मिच्छात्वसे हमें कोई भेद नहीं है। अमृतानुबन्धीअनुकूलका भी मिच्छात्वक समान ही भङ्ग है। इसी विरोधता है कि इसकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अमृत कात अमृतमुत्तं है, क्योंकि अमृतानुबन्धीअनुकूलकी विसर्गप्रमास्य करके और संश्रुत होकर जो अमृतमुत्तं पुनः इसकी विसर्गप्रमास्य करता है उससे वह कस्त पाया जाता है। नार संयत्त और पुनर्वपराकी उक्त प्रवेशविमर्शिका अमृत और उक्त कात एक समान है। अनुकूल प्रवेशविमर्शिका कात अमृत अमृत, अणादि-सप्त और सादि-सप्त है। इसमें आ सादि-सप्त कात है उसकी

जहण्णु० एगस० । अणुक्क० ज० दसवस्ससहस्साणि वासपुधत्तेण सादि०, उक्क०
अणंतकालं । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं उक्क० पदे०वि० केव० कालादो होदि ?
जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ६. एदेसिं चेव अणुक्कस्सदन्वकालपदुप्पायणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ एवरि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताण अणुक्कस्सदन्वकालो जहण्णेण
अंतोमुहुत्तं ।

अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अनन्त काल है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

विशेषार्थ—इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अपने अपने उत्कृष्ट स्वामित्वके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहा सबकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । मात्र जिस प्रकृतिकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके कालमें कुछ विशेषता है उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है इसके कारणका निर्देश मूलमें ही किया है । चार सञ्चलन और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अभव्योंकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, भव्योंकी अपेक्षा अनादि-सान्त और क्षपकश्रेणिमें सादि-सान्त कही है । क्षपकश्रेणिमें इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनकी सादि-सान्त अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति गुणितकर्माशिक ऐसे जीवके भी होती है जो अन्तमें पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण आयुके साथ असख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर आयुके अन्तिम समयमें स्थित है । उसके बाद यह जीव देव होता है और देव पर्यायसे आकर ऐसे जीवका वर्षपृथक्त्वकी आयुवाला मनुष्य होकर मोक्ष जाना भी सम्भव है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद उसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका इससे कम काल सम्भव नहीं है । यही कारण है कि यहाँपर इसका जघन्य काल वर्षपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्षप्रमाण कहा है । यहाँ जिन प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल कहा गया है उनकी इस विभक्तिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वके समान ही है यह बिना कहे ही जान लेना चाहिए, क्योंकि कालमें मिथ्यात्वसे जितनी विशेषता थी वही यहाँ पर कही गई है ।

§ ६ अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट द्रव्यके कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट द्रव्यका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१०. ह्यो ! सम्पत् पद्विष्णुगिस्संतकम्मियम्मि सम्पत्संततं तोमुहुत्तं परिप
खविद्वसजमाहणीयम्मि तदुवत्तामादो । चक्खस्तसामियस्स पा खवयस्स मशुक्कस्सम्मि
पद्विप गिस्संतवीकरणेज सम्पत्तहण्णतामुहुत्तमेवकाला पचम्भा, पुब्बिन्नादो वि पदस्स
अहण्णपापदंसगादो ।

ॐ उद्धस्सेय्य वेच्छावहिसागरोवमाणि साधिरेपाणि ।

११. निस्संतवक्कम्मियम्मिच्छाहिट्ठिम्मि सम्पत् पद्विष्णुगिस्संत पुजा मिच्छत्त गत्त
पद्वि० असं माग्मेवकालेण चरिमुत्थम्भणकंदवस्स चरिमफालीए सेसाए सम्पत्
पंचुण पद्विच्छावहिट्ठि ममियं पुणो मिच्छत्तं गत्त पस्सिरोवमस्स असंतवक्कविभागमेव-
कालेण चरिमुत्थम्भणकंदवस्स चरिमफालीए सेसाए सम्पत् पंचुण विदिपद्वावहिट्ठि
ममियं पुजा मिच्छत्त गत्त पस्सिदा असं माग्मेवकालेणुत्थम्भणकंदवस्स-सम्मा
मिच्छत्तम्मि तदुवत्तामादो ।

१२. क्योंकि इन दो प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित या जीव सम्बन्धको प्राप्त करके और
अन्तर्मुक्त कल तक सम्बन्धकी सत्तामात्रा हाकर अन्तर्मोहनीयकी चपका करता है उसके
इन दोनों प्रकृतियोंके अनुकूल इन्द्रिया जन्म काल अन्तर्मुक्त पावा जाता है । या इनके उत्कृष्ट
इन्द्रिया स्वामी या चपक जीव इन्हें अनुकूल करके निःसंख्य कर रहा है उसके इनके अनुकूल
इन्द्रिया सबसे जन्म कल अन्तर्मुक्त कहना चाहिये, क्योंकि पूर्वोक्त कालसे भी यह कल
जन्म देका जाता है ।

ॐ उत्कृष्ट काल साधिक दो ज्ञासठ सागरप्रमाण है ।

१३. क्योंकि इन दो प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित या मिच्छादृष्टि जीव सम्बन्धका प्राप्त
होकर पुन मिच्छादृष्टिमें जाकर पश्यके असंख्यातमें मागप्रमाण कल तक इनकी चोखना करते
हुए अन्तिम चोखनाकालकी अन्तिम पक्षिके दोष रहनेपर सम्बन्धको प्राप्त हुआ और
प्रथम ज्ञासठ सागर कल तक प्रमथ करके पुन मिच्छादृष्टि हुआ । तथा वहाँ पश्यके अर्थ
क्यातमें मागप्रमाण कल तक चोखना करते हुए प्रथम चोखना काण्डकी अन्तिम पक्षिके
दोष रहनेपर सम्बन्धको प्राप्त करके द्वितीय ज्ञासठ सागर कल तक उसके साथ प्रमथ
करता रहा और अन्तमें मिच्छादृष्टि होकर पश्यके असंख्यातमें मागप्रमाण कलके द्वारा निश्चने
सम्बन्ध और सम्बन्धित्यकी चोखना की उसके कल काल उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—पहोंपर दो चूर्चिस्त्रों द्वारा सम्बन्ध और सम्बन्धित्यकी अनुकूल
प्रवेशविमर्शिके जन्म और उत्कृष्ट कालका निर्णय किया गया है । ऐसा करते हुए बीरयेन
स्वामीने जन्म कल दो प्रकारसे पठित करके बतलाया है । प्रथम चोखनामें या ऐसा जीव
हिया है जिसके इन दो क्योंकि सत्ता नहीं है । ऐसा जीव सम्बन्धदृष्टि हाकर अन्तर्मुक्तमें यदि
इन्की चपका करता है तो उसके इन्की अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अन्तर्मुक्त काल उपलब्ध
होता है । दूसरे चोखनामें ऐसा चपक जीव हिया है या इन्की उत्कृष्ट प्रवेशविमर्शिता है ।

❀ जहण्णकालो जाणिदूण णेदव्वो ।

§ १२. सुगमं ।

§ १३. एवं जुणिणमुत्तमस्सिदूण कालपरुवणं करिय संपहि एत्थुच्चारणाइरिय-
वक्खाणकमं भणिस्सामो । कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए
पयदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० मिच्छत्त-अट्ठक०-सत्तणोक० उक्क० पदे०
विहत्ती० केवचिरं काला० ? जहण्णुक० एगस० । अणुक० ज० वासपुधत्तं, उक्क०
अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । एवं अणंताणु०चउक्क० । णवरि अणुक० ज०
अंतो० । सम्पत्त-सम्पामि० उक्क० पदेस० जहण्णुक० एगस० । अणुक० ज० अंतो०,
उक्क० वेच्च्चावट्ठिसागरोमाणि सादि० । चटुसंज०-पुरिसवेदाणं उक्क० पदे० जहण्णुक०

इस जीवके अन्तर्मुहूर्तमें इन कर्मोंकी नियमसे क्षपणा हो जाती है, इसलिए इसके भी इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है । इस प्रकार अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके ये दो उदाहरण उपस्थित कर वीरसेन स्वामी प्रथमकी अपेक्षा द्वितीयको ही प्रवृत्तमे उपयुक्त मानते हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि प्रथमकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जितना काल है उससे दूसरे उदाहरणकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल स्पष्टतः कम है और जघन्य कालमें जो सबसे न्यून हो वही लिया जाता है । यह तो इन दोनों कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य कालका विचार हुआ । उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण स्वयं वीरसेन स्वामीने किया ही है । यहाँ इतना ही सकेत करना है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर भी न्यूनानधिक है, इसलिए जहाँ जिस कर्मकी अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकी अन्तिम फालि प्राप्त हो वहाँ उसके सद्भावमें रहते हुए अन्तिम समयमें ही सम्यक्त्वको प्राप्त कराना चाहिए ।

❀ जघन्य कालको जानकर ले जाना चाहिए ।

§ १२ यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—इस चूर्णिसूत्रमें जघन्य पदसे तात्पर्य मिथ्यात्व आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य द्रव्यसे है । उसका जघन्य और उत्कृष्ट जो काल हो उसे जानकर घटित कर लेना चाहिए यह बात इस चूर्णिसूत्रमें कही गई है ।

§ १३. इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे कालका कथन करके अब यहाँ पर उच्चारणाचार्यके व्याख्यानके क्रमको कहेंगे । काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो

एगत् । अणुक्० अणादिभ्यो अपञ्चवसिदो अण्णादिभ्यो सपञ्चवसिदा सादिभा
सपञ्च० । तस्य भो सो सादिभ्यो सपञ्चवसिदो तस्स इमां गिर सो-अण्णु० अंतो० ।
इत्थिपेद० एक पदे० अण्णुक्० एगत्० । अणुक्० न० दसवत्ससइस्साभि
वासपुपत्तेन्यमहियाणि, एक अर्णत्तकृत्तमत्तसज्जा पोगत्तापरियद्दा ।

१४ आदेसेण० गेरइएत्तु मिच्छत्त-सोखत्तक०-अण्णाक० एक० पद०
अण्णुक्० एगत् । अणुक्० अह० अंतो० । इदो ? सत्तमाए पुड्डीए समपाहिय
अत्तसे फइपमेत्तावत्तसे मात्तए दम्भमुत्तस्स करिय विदियसमयमादिं काट्ठ अंतो
मुट्ठपमेत्तात्त अणुक्त्तदम्भेणच्छिय भिगयस्स तदुत्तमादो । गेरइएपरिमत्तमए
पदेस्समुत्तससापित्त पक्खिदत्तमेत्त सह पदस्स वक्खानस्स कर्णं न विरोहो ? विरोहो
वेव । किं तु मात्तवत्तपयत्ताकात्तमि आदपदसक्खयादो उवरिमत्तात्तपदेसत्तसत्तमा बहुओ
पि अइत्तइइरिओवत्तो तण गेरइएपरिमत्तमए येव उत्तसत्तपदेसत्तापित्त । उत्तारत्ता
इरियाणं पुण अहिप्पाएव उवरिमत्तवत्तादो आत्तमत्तपक्खमि आदपदेसक्खओ

इत्थात्त उत्तात्तमात्त है । बार संज्जसन और पुड्डीपेद्वी उत्तुत्त मरेरविमत्तिका जपन्व और
उत्तुत्त कात्त एक समय है । अणुत्तुत्त मरेरविमत्तिका जपन्व अण्णत्त, अणादि-सत्तत्त और
सद्दि-सत्तत्त कात्त है । जमत्तसे आ सादि-सत्तत्त कात्त है उत्तका यह निर्रेरा है । उत्तकी अपेक्षा
जपन्व और उत्तुत्त कात्त अण्णत्तुत्त है । कीवेद्वी उत्तुत्त मरेरविमत्तिका जपन्व और उत्तुत्त
कात्त एक समय है । अणुत्तुत्त मरेरविमत्तिका जपन्व कात्त अण्णत्तवत्त अतिउत्त दत्त इत्तार वत्त
और उत्तुत्त अण्णत्त कात्त है आ अत्तवत्तात्त पुट्ठत्त परित्तनके वत्तवत्त है ।

विरोपार्थ—वहाँ उत्तारत्तात्तात्तके व्याख्यात्मके वही सब कात्त कहा गया है जो कि पूर्व-
सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है । मात्र पूर्वसूत्रमें मिच्छत्त अहं की अणुत्तुत्त मरेरविमत्तिका
जपन्व कात्त तीन प्रकार से बतलाया गया है सा यहाँ अण्णत्त कात्त और अत्तवत्तात्त व्याख्यात्मक
कात्त इन दो का जोड़कर एकका ही व्याख्या किया गया है, क्योंकि उक्त तीन प्रकारके कात्तोंमें से
सबसे जपन्व कात्त वही प्राप्त होता है और यह निर्दिष्ट है ।

१४ आदेसत्ते मात्तकियेमें मिच्छत्त सोत्तइ कपाय और इह पाट्ठपायोंकी उत्तुत्त
मरेरविमत्तिका जपन्व और उत्तुत्त कात्त एक समय है । अणुत्तुत्त मरेरविमत्तिका जपन्व कात्त
अण्णत्तुत्त है क्योंकि सत्तत्त प्रविष्टीमें आपुके एक समय अतिउत्त अत्तवत्तात्त त्पत्तकमात्त शेष
एहमे पर उक्त कर्मोंके इत्तके उत्तुत्त करने और दूसरे समयसे उत्तर अण्णत्तुत्त कात्त उक्त
अणुत्तुत्त इत्तके साथ उत्तर निकलमेत्तात्त कीवके उक्त कात्त थावा थावा है ।

इत्था—मात्तकीके अन्तिम समयमें मरेरसत्तत्तके उत्तुत्त व्याख्यात्मका कथन करनेवाले
सूत्रके साथ इस व्याख्यात्मका विरोध कैसे नहीं प्राप्त होता ?

समाधान—उक्त सूत्रके साथ इस व्याख्यात्मका विरोध वा है ही किन्तु आपुजपन्वके
कात्त में जो मरेरत्तका वत्त होता है उससे आत्तेके कात्तमें होमेत्तात्ता मरेरत्तका वत्तवत्त बहुत है
यह वत्तवत्तात्तात्त अण्णत्त है, इत्थिप इत्त अण्णत्तके अणुत्तार मात्तकीके अन्तिम समयमें ही
उत्तुत्त मरेरसत्तवत्त प्राप्त होता है । परन्तु व्याख्यात्तात्तके अतिमात्तके आपुजपन्व कात्तसे आत्तेके

हुओ ति तेण आउअवंधे चरिमसमयअपारद्धे चेव उक्कस्ससामित्तं होदि ति तदो
 माणाकणिट्ठदाए जिण्णयाभावादो त्यप्पं काऊण वक्खवाणेयव्वं । उक्क० तेतीसं
 सागरोवमाणि । णवरि अणंताणु० चउक्क० जह० एगसमओ । कुदो ? चउवीससंत-
 क्रम्मियउवसमसम्मादिट्ठिम्मि सासणं गतूण अणंताणुबंधिसंतमुप्पाइय विदियसमए
 णिप्पिलिदम्मि तदुवलभादो । उक्क० त चेव । सप्पत्त-सम्मामि० उक्क० पदे०
 जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एग०, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि । तिण्हं
 वेदाणसुक्क० पदेस० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० दसवस्ससहस्साणि
 समयूणाणि, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि ।

कालमे होनेवाले सञ्चयसे आयुबन्धके कालमें प्रदेशोंका क्षय बहुत होता है इसलिए आयु बन्धके
 प्रारम्भ होनेके पूर्व अन्तिम समयमें ही अर्थात् आयुबन्ध प्रारम्भ होनेके अनन्तर पूर्व समयमें
 ही उत्कृष्ट स्वामित्व होता है । अतएव जिज्ञासाका निर्णय न होनेसे इस विषयको स्थगित करके
 व्याख्यान करना चाहिए ।

उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इतनी विशेषता
 है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि
 चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त
 होकर और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके सत्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें अन्य गतिमें चला
 जाता है उसके एक समय काल पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट काल वही है । अर्थात् तेतीस सागर
 ही है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक
 समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर
 है । तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट
 प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस
 सागर है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और ब्रह्म नोकषायोंकी
 उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सातवें नरकमें आयुबन्धसे पूर्व अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका
 जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है तथा उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके बाद नरकभवमें जो
 अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचता है वह इन कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल है
 और इसका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर उस नारकीके होता है जिसके उस पर्यायमें
 उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नहीं होती । यही कारण है कि उक्त कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका
 जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है । मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी
 अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, इसलिए कारण सहित इस
 कालका निर्देश अलगसे किया है । यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके
 जघन्य कालका निर्देश करके 'उक्क० त चेव' कहकर उत्कृष्ट काल भी कह दिया है पर इससे यह
 मिथ्यात्व आदिकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट काल से अलग है ऐसा नहीं समझना
 चाहिए, अन्यथा 'त चेव' पद देनेकी कोई सार्थकता नहीं थी । सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी
 उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्कृष्ट स्वामित्वके अनुसार एक समयके लिए होती है, इसलिए इसका
 जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जो जीव अपनी-अपनी उद्वेलनाके अन्तिम

११५ पदमाए आव छठि पि पिच्छत-पारसक०-अनजोक० उद० पदेस०
 नहणुद० एगस । अणुक नह० पदमाए दसमस्तसहस्ताणि समऊणाणि । इदो
 समऊणत्तं ? उप्पणपडमसमए पदेसस्त जाडुदस्तसत्तवादो । सेसाउ पुडवीसु नर०
 समसगजहणदिदीओ समऊणाओ, उद० सगसगुदस्तदिदीओ । एवमणंताउ०
 चउद०-सम्मत्त-सम्मापिच्छताणं । जवरि अणुक० न० एगस० । सत्तमीए गिरओपं ।
 जवरि इत्थि-पुरिस-गठंसयवेदाणमुद० पद० नहणुद० एग० । अणुक० न०
 पावीसं सागरोवमाणि, उद० तेवीसं साग० । अणंताउ० चउद० उद० पदे०
 नहणुद० एम० । अणुक० न० अंता० । इदो न एगसममा ? सत्तमाए पुडवीए
 सासज्जाणेज गिमायाभावादो । उद० तेवीसं सागरो० ।

समयमें नरकमें उत्पन्न होता है पहले यहाँ इसकी अनुकूल प्रेरणामयि एक समय तक बेची
 जाती है, अतः इन दोनों प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रेरणामयिका जपन्य काल एक समय कहा है ।
 इसका उत्कृष्ट काल तेवीस सागर है यह स्पष्ट ही है । तीनों बेहोकी उत्कृष्ट प्रेरणामयि नरकमें
 उत्पन्न होवेक प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिये इसका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय
 कहा है । तथा नरककी जपन्य स्थितिमेंसे इस एक समयको कम कर देने पर तीनों बेहोकी
 अनुकूल प्रेरणामयिका जपन्य काल एक समय कम जपन्य आमुप्रमाय होता है और इसका
 उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट आमुप्रमाय है यह स्पष्ट ही है ।

११६ पद्मी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें पिच्छात्त बारह कपाल
 और नौ नृकपायोकी उत्कृष्ट प्रेरणामयिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकूल
 प्रेरणामयिका जपन्य काल प्रथम पृथिवीमें एक समय कम इस इवार बर्ण है ।

शंका—एक समय कम क्यों है ?

समाधान—क्योंकि यहाँ जपन्य होनेके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट उत्पन्न होता है ।

रोप पृथिवीमें कुछ प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रेरणामयिका जपन्य काल एक समय कम
 अपनी-अपनी जपन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल जहाँमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-
 प्रमाण है । इसी प्रकार अन्यतानुबन्धीकतुष्क, सम्पत्त और सम्पत्तिध्वान्तकी अपेक्षा काल
 जानन्य चाहिए । इसी विरोधता है कि इसकी अनुकूल प्रेरणामयिका जपन्य काल एक
 समय है । सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारकियोंके सामान मात्र है । इसी विरोधता है कि श्रीवेद,
 मुक्पद और मनुस्मृतिकी उत्कृष्ट प्रेरणामयिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।
 तथा अनुकूल प्रेरणामयिका जपन्य काल बारस सागर है और उत्कृष्ट काल तेवीस सागर
 है । अन्यतानुबन्धीकतुष्ककी उत्कृष्ट प्रेरणामयिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।
 अनुकूल प्रेरणामयिका जपन्य काल अस्तगुह्य है ।

शंका—एक समय क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि सातवीं पृथिवीसे सासाधन गुणस्थानके साथ निर्माण नहीं होता है ।
 तथा उत्कृष्ट काल तेवीस सागर है ।

विशेषार्थ—जबमयि तद पृथिवीमें गुणिकमार्गविधिसे जाये हुए जीवके नरकमें

§ १६. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक्क० उक्क० पदे० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं । एदं समयूणं ति किं ण उच्चदे ? ण, णेरइयेहिंतो णिग्गयस्स अपज्जतएसु अणंतरसमए उववादाभावादो । अणंताणु० चउक्क०-इत्थिवेदाणमेगस० । सन्वासिमुक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठा । सम्मत्त-सम्पामि० उक्क० पदे० जहणुक्क० एग० । अणुक्क० ज० एग०, उक्क०

उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नांकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इन नरकोंमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। मात्र इन नरकोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान भी सम्भव है, इसलिए इन नरकोंमें इसका जघन्य काल एक समय कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति प्रथमादि छह नरकोंमें जो गुणितकर्मांशिक जीव आकर और वहाँ उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमें यथाशास्त्र उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके अन्तिम समयमें होती है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर जो उक्त नरकोंमें उत्पन्न होता है उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समय देरी जाती है, अतः उक्त नरकोंमें इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है और इसका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सातवीं पृथिवीमें अन्य सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंमें जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं उस प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र जिन प्रकृतियोंमें कुछ विशेषता है उसका स्पष्टीकरण करते हैं। तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति तो गुणितकर्मांशिक जीवके यहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको सातवें नरकी जघन्य स्थितिमेंसे कम कर देनेपर यहाँ उनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल पूरा वार्डस सागर प्राप्त होता है और इसका उत्कृष्ट काल यहाँकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामित्व ओषधके समान है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर कहा है। यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति का जघन्य काल एक समय क्यों नहीं बनता इसके कारणका निर्देश मूलमें ही किया है।

§ १६ तिर्यश्चगतिये तिर्यश्चोमे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नांकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है।

शंका—इसे एक समय कम क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियोंमेंसे निकले हुए जीवका अनन्तर समयमें अपर्याप्तक जीवों में वृत्ताद नहीं होता।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जा असख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विष्णि पत्तिदोषमाणि पत्तिदोषमस्त व्यसं० यागेण सादिरे० ।

१७ पञ्चदिवसि विरक्तियमि दृष्ट्वा संप्रपद्यीणमुक्त्वा पदे० बह्मपुत्र०
पगस० । अथुक्त्वा ज० सुद्धा० अंतामु०, अर्णताणु० चरक०-इत्यपि द्वागमेगस०, रक्त०
सम्प्राप्तिं विष्मि पल्लिवोद्यमाणि पुञ्जकोटिपुपत्तेगमहियाणि । सम्पत्त-सम्प्रा-
पिच्छत्तामदित्येदमंगो ।

अनुकूल प्रदेशविभक्तिका अपनय कास एक समय है और एकदम कास पस्यका असंभ्यातर्त
भास्य अथिक हीन पस्य प्रभास है ।

विशेषार्थ—यहाँ सब कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रवेशविमर्शि अपने अपने शक्ति के अनुसार एक समयके लिए होती है, इसलिये इसका अर्थ और उत्कृष्ट का एक समय कहा है। आगेकी सर्वाधारोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए, इसलिये अपने सब कर्मोंकी मात्र अनुकूल प्रवेशविमर्शिक काजका स्पष्टीकरण करेंगे। तिसरोंमें अर्थ अथवा सुस्वप्न मन्महात्म्यमया है और कार्यस्थिति अनन्त का प्रमाण है। इसलिये इनमें प्रथीस प्रकृतियोंकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अर्थ का सुस्वप्न मन्महात्म्यमया और उत्कृष्ट अनन्त का प्रमाण है। मात्र यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्क और क्षीरेक्षी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अर्थ का एक समय भी बत जाता है इसलिये इसका अर्थसे निर्दिष्ट किया है। या क्षीरेक्षी उत्कृष्ट प्रवेशविमर्शि करनेके बाद एक समय तक तिसरोंमें रहकर देख हो जाता है उसके क्षीरेक्षी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अर्थ का एक समय बत जाता है और जिस तिसरोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विद्योत्पत्ति करके तिसरोंमें रहनेका का एक समय होप रहने पर साक्षात्प्राप्तस्थान प्राप्त करके उससे संयुक्त हुआ है उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अर्थ का एक समय बत जाता है। तिसरोंमें सम्बन्ध और सम्बन्धितत्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अर्थ का एक समय होतमकी अपेक्षा बत जाता है, इसलिये इसका अर्थ का एक समय कहा है। सम्बन्धितत्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अर्थ का एक समय होतमकी अपेक्षा भी बत जाता है इसका यहाँ निर्णय जानना चाहिए। तथा जो तिसरोंमें पश्यके असंख्यातमें मागमया का एक तक इनकी होतता करते हुए अनन्त तीन पश्यकी आधुके माग अथवा मागमूमिमें उत्पन्न होते हैं और यहाँ अधिकतर समय तक सम्बन्धितत्वका साथ रहते हुए इनकी सदा बतसे रहते हैं उनके इस सब काजक भीतर बत होनी प्रकृतियोंकी सदा बनी रहती है, इसलिये इनकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका उत्कृष्ट का एक पश्यके असंख्यातमें माग अधिक तीन पश्य कहा है।

§ १७ पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्भित्तमे ज्ञानीस मनुसिर्बोकी चक्षुः प्रवेष्टविमलिका अवस्थ
 और चक्षुः कक्ष एक समय है । अनुकूल प्रवेष्टविमलिका अवस्थ काल तिर्यग्भोमे हस्तक
 मयपक्षप्रमाण और रोप बा में चक्षुर्भूत है । किन्तु अज्ञानामुज्ज्वलीचक्षुः और ज्ञानकी
 अनुकूल प्रवेष्टविमलिका अवस्थ कक्ष एक समय है और सबका चक्षुः कक्ष पूर्वोक्ति प्रयत्न
 अधिक ठीक पश्य है । सम्प्रत्यक्ष और सम्प्रतिष्ठावका मनु ज्ञानिवक्ता समग्र है ।

विद्यापार्थ—पञ्चनिष्ठ तिर्यञ्चोकी जपस्य स्थिति भुक्तक मन्त्रप्रत्ययमात्र और रोप वा की अन्तर्मुहूर्त है। तथा सचकी कर्पास्थिति पूर्वाह्नविद्युत्काल अधिक घीन पवन है। इसप्रिय हमने इसीच मन्त्रियोकी अमुक्तक मन्त्रविमर्शिका जपस्य काल कमस भुक्तक मन्त्रप्रत्य-

§ १८. पंचि०तिरि०अपज्ज० छ्वीसं पयडीणं उक्क० पदे० जहणुक्क० एगस० ।
अणुक्क० ज० खुद्धाभव० समज्जणं, उक्क० अंतो० । सम्मत-सम्मापिच्छताणमेवं चैव ।
णवरि अणुक्क० ज० एगस० । एवं मणुसअपज्जत्ताणं ।

§ १९. मणुसतियम्मि अट्ठावीसं पयडीणं उक्क० पदे० जहणुक्क० एगस० ।
अणुक्क० ज० खुद्धा० अंतो० समज्जणं, उक्क० सगट्ठिदी । णवरि सम्म०-सम्मापि०-
अणंताणु०चउक्क०-इत्थिवेद० अणुक्क० ज० एगस० । चटुसंज०-पुरिस० अणुक्क०
ज० अंतोमु० ।

प्रमाण और अन्तर्मुहूर्त कहा है तथा उत्कृष्ट काल पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है ।
मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य तिर्यञ्चोंके समान
यहाँ भी बन जाती है, इसलिए यहाँ इसका जघन्य काल एक समय कहा है । सम्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वकी प्ररूपणा स्त्रीवेदके समान घटित हो जाती है, इसलिए उसे उसकी प्ररूपणाके
समान जानने की सूचना की है ।

§ १८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोमें छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका
जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम
क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका
भङ्ग इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक
समय है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका एक समय काल कम कर देने पर यहाँ अनुत्कृष्ट
प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्राप्त होता है और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति
अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, इसलिए इन जीवोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य
काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्य सब काल इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए उसे
इसी प्रकार जानने की सूचना की है । मात्र इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उद्देलना की अपेक्षा
एक समय काल भी प्राप्त होता है, इसलिए इनकी उक्त विभक्तिका जघन्य काल अलगसे एक
समय कहा है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें यह कालप्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनमें
पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ १९ मनुष्यत्रिकमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक
भवग्रहणप्रमाण है और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी कायस्थिति-
प्रमाण है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और
स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है । तथा चार सञ्चलन और
पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका एक समय काल अपनी अपनी
जघन्य स्थितिमेंसे कम कर देने पर अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्राप्त होता है, इसलिए
यहाँ पर अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें एक समय कम क्षुल्लक भव
ग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके मनुष्योंमें एक समय कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । इनमें

§ २० देवगदीए देवेसु मिच्छ०-बारसक०-सचणोह०-उह०-पदे०-जहणुह०-एग० । मणुह०-जह०-दसवस्ससहस्साणि समसणानि, उह०-तेपीसं सागरो० । एवं सम्मत्त-सम्मायि० अणंताणु०-वसकाणं । जवरि मणुह०-ज०-एगस०, उह०-त पेय । एवं पुरिस-जईसपवेदाणं । जवरि मणुह०-ज०-दसवस्ससहस्साणि, उह०-तेपीसं सामरोवमायि ।

§ २१ मयन०-माण०-आइसि०-जम्बीसं पयडीणमुह०-पदे०-जहणुह०-

इसका बहुत बड़ा कार्यस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मात्र हममें सम्यक्त्वका उद्देशना और कपलाकी अपेक्षा तथा सम्मत्तिप्रमाणका उद्देशनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकणुष्का संयोजना होकर साक्षात्त गुणस्थानके साथ विवक्षित पर्यायमें एक समय रहनेकी अपेक्षा और जीविका का बहुत प्रवेष्टिमिति के बाव एक समय तक अनुकूल प्रवेष्टिमिति के साथ विवक्षित पर्यायमें रहनेकी अपेक्षा एक प्रवृत्तिवर्गी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल एक समय बन जाने से यह एक प्रमाण कहा है । तथा चार संयोजन और पुरुषवर्गी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त या आपसे घटित करके बतला जाये है यह अनुपपन्नमें सम्भव है इसलिये इनमें एक प्रवृत्तिवर्गी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ २ देवगदीमें देवोंमें मिच्छात्वा बारह कपाय और सात नोकपायोंकी बहुत प्रवेष्टिमिति का अपन्य और बहुत बड़ा एक समय है । अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल एक समय कम इस प्रकार वर्ण है और बहुत कम लीस सागर है । इसी प्रकार सम्यक्त्व सम्मत्तिप्रमाण और अनन्तानुबन्धीकणुष्का अपेक्षा का ज्ञानता चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल एक समय है और बहुत कम लीस है । पुरुषवर्गी और अनुकूल प्रवेष्टिमिति का भी इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल इस प्रकार वर्ण है और बहुत कम लीस सागर है ।

विशेषार्थ—देवोंमें मिच्छात्वा बारह कपाय और सात नोकपायोंकी बहुत प्रवेष्टिमिति गुणित कमाधिक जीवक यहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है । इसलिये यहाँ इस प्रवृत्तिवर्गी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल एक समय कम इस प्रकार वर्ण कहा है । बहुत कम लीस सागर है यह स्पष्ट ही है । शेष प्रवृत्तिवर्गी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का बहुत कम लीस है । मात्र अपन्य कालमें अन्तर है । सम्यक्त्वका उद्देशना और कपलाकी अपेक्षा सम्मत्तिप्रमाणका उद्देशनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धीकणुष्का संयोजना होकर साक्षात्त गुणस्थानके साथ एक समय विवक्षित पर्यायमें रहनेकी अपेक्षा एक समय काल बन जाता है इसलिये यहाँ इनकी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल एक समय कहा है । तथा पुरुषवर्गी बहुत प्रवेष्टिमिति प्रयोगमकी स्थितिवाले देवोंके अन्तिम समयमें होती है, इससे कम स्थितिवाले देवों इसलिये या इसकी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का अपन्य काल पूरा इस प्रकार वर्ण कहा है और अनुकूल प्रवेष्टिमिति प्रदान करनेमें होती है, इसलिये इसकी अनुकूल प्रवेष्टिमिति का भी अपन्य काल पूरा इस प्रकार वर्ण कहा है ।

§ २१ मयनवासी अन्तर और अ्याधिपी देवोंमें जम्बीस प्रवृत्तिवर्गी बहुत

एगस० । अणुक० जह० जहण्णट्ठिदी समऊणा, उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदीओ ।
णवरि अणंताणु०चउक्क० जह० एगस० । सम्मत-सम्माभिच्छत्ताणमणंताणु०-
चउक्क०भंगो ।

§ २२. सोहम्मादि जाव सहस्सरो ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० उक्क०
पदे० जहणुक० एगस० । अणुक० जह० सग-सगजहण्णट्ठिदीओ समऊणाओ, उक्क०
सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ । अणंताणु०चउक्क०-सम्मत-सम्माभिच्छत्ताणं एवं चेव । णवरि
अणुक० जह० एगस०, उक्क० तं चेव ।

§ २३. आणदादि जाव णवगेवेज्जा ति छ्वीस पयडीण उक्क० पदे०

प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल
एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।
इतनी विशेषता है कि अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय
है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग अनन्तानुवन्धीचतुष्कके समान है ।

विशेषार्थ—उक्त देवोंमें उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है,
इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य
स्थितिप्रमाण कहा है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मात्र अनन्तानु-
वन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय सामान्य देवोंके समान यहाँ
भी बन जाता है, इसलिए इसके जघन्य काल एक समयका अलगसे निर्देश किया है ।
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग अनन्तानुवन्धीचतुष्कके समान कहनेका कारण यह है
कि यहाँ पर इनका भी स्वेतलनाकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय
बन जाता है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ २२ सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्त्रार कल्प तकके देवोंमें मिध्यात्व बारह कपाय और
नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट
प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और
उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुवन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और
सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका
जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वही है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रारम्भमें कही गई चारहस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति
उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है । मात्र सौधर्म और ऐशान कल्पमें पुरुषवेद और
नपुसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उस पर्यायके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इन
सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य
स्थितिप्रमाण कहा है । तथा शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य देवोंके समान
यहाँ भी घटित हो जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कहा है । यहाँ सब
प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह
स्पष्ट ही है ।

§ २३ आन्त कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

महण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० भइ० सुहाबेपपाहो समयणो, उक्क० सगहिदी ।
णवरि मर्णताणु० चउक्कस्स अणुक्क० पइ० भइ० एगस० । एव सम्मत्त-सम्मा
मिच्छयाणं ।

§ २४ अनुसारादि याव सम्बन्धसिद्धि पि सत्तावीसं पयहीण्णुक्क० पदे०
महण्णुक्क० एगस० अणुक्क० भइ० महण्णुहिदी समयणा, उक्क० सगहस्सहिदी ।
णवरि मर्णताणु० चउक्क० अणुक्क० भइ० अंतोमु० । सम्मत्त० उक्क० पदेसमहण्णुक्क०
एगस० । अणुक्क० चइ० एगस०, उक्क० सगहिदी । एवं षोडशं याव अभाहारि पि ।

प्रदेशविमर्शिका अपन्य और उक्त काल एक समय है । अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य काल
हुस्तककाल के पाठके अनुसार एक समय कम अपन्य स्थितिप्रमाण है और उक्त काल अपनी
अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुक्त
प्रदेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय है । इसी प्रकार सम्पत्त और सम्पत्तिध्यातकी
अपेक्षासे जानना चाहिए ।

विरोधार्थ—यहाँ मिथ्यात्व, सोलह काल और लह जाकपावोंकी उक्त प्रदेशविमर्शिका
अपने अपने मन्ते प्रथम समयमें सम्पत्त है । तीनों वेदोंकी उक्त प्रदेशविमर्शिका स्वमित्तके
अनुसार पचास मन्ते प्रथम समयमें सम्पत्त नहीं है, क्योंकि स्वमित्तप्रमाणमें शुद्धि-
कमीरविधिसे आकर जा इत्यदिगके साथ मरकर और यहाँ उक्त होकर निश्चित वेदके
परलकालके अन्तिम समयमें स्थित है उसके तीनों वेदोंकी उक्त प्रदेशविमर्शिका कल्लाई है पर
हुस्तककालके पाठके अनुसार तीनों वेदों सहित उक्त सब प्रवृत्तियोंकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका
अपन्य काल एक समय कम अपनी अपनी अपन्य स्थितिप्रमाण बतलाता है जो विचार कर
पटित कर लेना चाहिए । मात्र अन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य काल
एक समय सामान्य वेदोंके समान यहाँ भी बन जाता है, इसलिये वह उक्त प्रमाण कहा है ।
तथा यहाँ सम्पत्त और सम्पत्तिध्यातकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय
ही है क्योंकि सम्पत्तकाल उल्लेख और उपलब्धी अपेक्षा तथा सम्पत्तिध्यातका लोसकाकी
अपेक्षा एक समय काल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती । इसलिये इनकी प्रकृत्या अन्तानु-
बन्धीचतुष्कके समान जाननेकी सूचना की है । यहाँ सब प्रवृत्तियोंकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका
उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ २५ अनुसारासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके वेदोंमें सत्ताईस प्रवृत्तियोंकी उक्त
प्रदेशविमर्शिका अपन्य और उक्त काल एक समय है । अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य
काल एक समय कम अपन्य स्थितिप्रमाण है और उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थिति-
प्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य
काल अन्तमुहूर्त है । सम्पत्तकी उक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य और उक्त काल एक समय
है । अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय है और उक्त काल अपनी अपनी
उक्त स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अभाहारक मार्गका वह स जाना चाहिए ।

विशेष—उक्त प्रदेशविमर्शिके एक समयका अपनी अपनी अपन्य स्थितिमें कम
कर देने पर सत्ताईस प्रवृत्तियोंकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अपन्य काल प्राप्त होता है । इसलिये
वह एक समय कम अपन्य स्थितिप्रमाण कहा है । मात्र जा वक्ष्यस्वमर्शिका अन्तानुबन्धीकी

§ २५. जहणणए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण पिच्छत्त-एकारसकसाय-णवणोकसाय० जहणणपदे जहणणुकस्सेण एगसमओ । अजहणणे० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणं जहणणपदे जहणणुक० एगसमओ । अजह० ज० अंतोमु०, उक्क० वेळावट्टि सागरोवमाणि सदियेयाणि । अणंताणु० चउक्क० ज० पदेस० जहणुक० एगस० । अज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिदेसो—जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्ठं देसूणं । लोभसंजल० जह० पदे० जहणुक० एगस० । अज० तिण्णि भंगा । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जहणुक० अंतोमुहुत्तं ।

विसंयोजना किये बिना वहाँ उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्त कालमें उनकी विसंयोजना कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक ही देखी जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । क्षणकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय यहाँ भी सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । इस प्रकार यहाँ तक ओघसे और चारों गतियोंमें कालका विचार किया । आगे अपनी अपनी विशेषताको जानकर वह घटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ ।

§ २५. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागर है । अनन्तानुवन्धीचतुष्पकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है । उनमें जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । लोभसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन भङ्ग हैं । उनमें जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अपने अपने स्वामित्वके अनुसार ओघ और आदेशसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समय तक ही होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल सर्वत्र एक समय कहा है । अतः यहाँ केवल सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके कालका विचार करेंगे । मिथ्यात्व आदि इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणोंके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका काल अभव्यों या अभव्योंके समान भव्योंकी अपेक्षा

महण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० मह० सुहावंपपाढो समउणो, उक्क० समहिदी ।
गवरि अणंवाणु पउक्कस्स अणुक्क० पव० मह० एगस० । एव सम्मत-सम्मा
मिण्णुत्तारं ।

॥ २४ ॥ अनुसिद्धि आब सम्महिदिदि पि सत्तावीसं पयडीणमुक्क० पदे०
महण्णुक्क० एगस० अणुक्क० मह० महण्णहिदी समयूणा, उक्क० सणुक्कस्सहिदी ।
गवरि अणंवाणु पउक्क० अणुक्क० मह० अंतोमु० । सम्मच० उक्क० पइसमहण्णुक्क०
एगस० । अणुक्क० मह० एगस०, उक्क० सगहिदी । एवं नेवुम्म आव अणुहारि सि ।

प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य और उक्कउ कास एक समय है । अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य कास
सुसुक्कउक्कउके पाठके अनुसार एक समय कम अथर्व्य स्थितिप्रमाण है और उक्कउ कास अपनी
अपनी उक्कउ स्थितिप्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अन्तवानुबन्धीचतुष्ककी अनुसुद्ध
प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य कास एक समय है । इसी प्रकार सम्मक्त्व और सम्ममिध्यात्वकी
अवेकाते जानना चाहिए ।

विरोधार्थ—जहाँ मिध्यात्व, सोलह कपाय और जह नरुपायोंकी उक्कउ प्रदेशविमर्षि
अपने अपने यवके प्रथम समयमें सम्मव है । तीनों वेदोंकी उक्कउ प्रदेशविमर्षि स्वमित्वके
अनुसार पचापि मक्क प्रथम समयमें सम्मव नहीं है, क्योंकि स्वमित्वप्रमाणमें गुणित-
कर्मविधिसे आकर जो इत्यसिगके साथ मरकर और जहाँ उत्पन्न होकर विधिवत् वेदके
परशकालके अन्तिम समयमें स्थित है उसके तीनों वेदोंकी उक्कउ प्रदेशविमर्षि वतत्ता है पर
सुसुक्कउक्कउके पाठके अनुसार तीनों वेदों सहित उक्त सब मनुषियोंकी अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका
अथर्व्य कास एक समय कम अपनी अपनी अथर्व्य स्थितिप्रमाण वतत्ता है सा विचार कर
बटित कर लेना चाहिए । मात्र अन्तवानुबन्धीचतुष्ककी अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य कास
एक समय सामान्य वेदोंके समान जहाँ भी बन जाता है, इसलिये यह उक्त प्रमाण कहा है ।
तथा जहाँ सम्मक्त्व और सम्ममिध्यात्वकी अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य कास एक समय
ही है, क्योंकि सम्मक्त्वका उद्देशना और उपायकी अवेका तथा सम्ममिध्यात्वका उद्देशनाकी
अवेका एक समय कम प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती इसलिये इनकी प्रकृत्या अन्तवानु-
बन्धीचतुष्कके समान जाननेकी सूचना भी है । जहाँ सब मनुषियोंकी अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका
उक्कउ कम अपनी अपनी उक्कउ स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

॥ २४ ॥ अनुसिद्धि सेकर सर्वावस्थिति उक्कउ वेदोंमें सत्तावीस मनुषियोंकी उक्कउ
प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य और उक्कउ कास एक समय है । अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य
काल एक समय कम अथर्व्य स्थितिप्रमाण है और उक्कउ कास अपनी अपनी उक्कउ स्थिति-
प्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अन्तवानुबन्धीचतुष्ककी अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य
काल अन्तर्गृहीत है । सम्मक्त्वकी उक्कउ प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य और उक्कउ कास एक समय
है । अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य कास एक समय है और उक्कउ कास अपनी अपनी
उक्कउ स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अन्तवारक माग्या उक्त के जाना चाहिए ।

विरोधार्थ—उक्कउ प्रदेशविमर्षिके एक समयका अपनी अपनी अथर्व्य स्थितिसे कम
कर देने पर सत्तावीस मनुषियोंकी अनुसुद्ध प्रदेशविमर्षिका अथर्व्य कास प्राप्त होता है, इसलिये
यह एक समय कम अथर्व्य स्थितिप्रमाण कहा है । मात्र जो वेदकसम्बन्धि अन्तवानुबन्धी

§ २५. जहणणए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-एकारसकसाय-णवणोकसाय० जहणणपदे जहणणुक्कस्सेण एगसमओ । अजहण्णे० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो । सम्मत-सम्माभिच्छत्ताणं जहणणपदे जहणणुक्क० एगसमओ । अजह० ज० अंतोमु०, उक्क० वेद्धावट्ठि सागरोवमाणि सदिरैयाणि । अणंताणु०चउक्क० ज० पदेस० जहणुक्क० एगस० । अज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिहेसो—जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्ठं देसूणं । लोभसंजल० जह० पदे० जहणणुक्क० एगस० । अज० तिण्णि भंगा । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जहणणुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

विसंयोजना किये बिना वहाँ उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्त कालमें उनकी विसंयोजना कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक ही देखी जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । क्षणकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय यहाँ भी सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । इस प्रकार यहाँ तक ओघसे और चारो गतियोंमें कालका विचार किया । आगे अपनी अपनी विशेषताको जानकर वह बटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ ।

§ २५. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और नौ नौकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है । अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है । उनमें जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । लोभसज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन भङ्ग हैं । उनमें जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अपने अपने स्वामित्वके अनुसार ओघ और आदेशसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समय तक ही होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल सर्वत्र एक समय कहा है । अतः यहाँ केवल सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके कालका विचार करेंगे । मिथ्यात्व आदि इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका काल अभव्यों या अभव्योंके समान भव्योंकी अपेक्षा

१२६ आदसेण येरइपसु मिच्छत्त-सत्तणोकसाय० अह० पदे० अहण्णुक० एग-
सममो । अम० अह० अंतासु०, उक्क० सेधीसं सागरोवमाणि । सम्मत-सम्मापि०
अंमंताणु० अउक्काणं अह० पद अहण्णुक० एगस० । अम० अह एगसममो, उक्क०
सेधीसं सागरो० । बारसक०-मय-मुहुंआणं अह० पदे० अहण्णुक० एगस० । अम०
अ० दसवस्ससइस्साणि समयुणाणि, उक्क० सेधीसं सागरोवमाणि ।

अनादि-अनन्त और इतर मध्योर्धी अयेदा अनादि-स्रान्त कहा है । सम्मत्त्व और सम्ममिध्यात्व
य वहेलना प्रवृत्तिर्षी हैं । इसका सत्त्व होकर कपया द्वारा कमसे कम अन्तमुहुर्तमें अम्यव हो
रुक्ता है और आ मारम्भमें, मध्यमें और अन्तमें इसकी वहेलना करते हुए वो दयासठ सागर
असल एक सम्मत्त्वके साथ रहता है उसके साथिक वो दयासठ सागर अतल एक इनका सत्त्व देख्य
जाता है, इसलिये इनकी अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि अजपम्य अतल अन्तमुहुर्त और उल्लुह अंस
साविक वो दयासठ सागर कहा है । इनका सत्त्व अनादि-अनन्त और अनादि-स्रान्त तर्ही होय,
इसलिये य दो मज्ज मर्ही बहे हैं । अन्तानुबन्धीचतुष्क अनादि रुपावासी होकर भी विसंयोजना
प्रवृत्तिर्षी हैं, इसलिये इनके अनादि-अनन्त, अनादि-स्रान्त और सारि-स्रान्त ये तीन मज्ज बहे
हैं । तथा सारि-स्रान्तके आकष्य निर्देश करते हुए यह अजपम्य अन्तमुहुर्त कहा है, क्योंकि विसं-
याज्याके बाद अन्तमुहुर्तके लिए इसकी रुपा होकर पुन विसंयोजना हो सकती है । तथा
उल्लुह अतल इस कम अर्धपुद्गलप्रमाणा कहा है, क्योंकि कोई जीव इस अतलके प्रारम्भमें और
अन्तमें इनकी विसंयोजना करे और मध्यमें न करे यह सम्भव है । सोमकी अजपम्य प्रदेश-
किमिच्छिके भी तीन मज्ज हैं । अनादि-अनन्त मज्ज अमन्योकि होता है । अनादि-स्रान्त मज्ज
मम्यके अजपम्य प्रदेशकिमिच्छिके पूर्वे होता है और सारि-स्रान्त मज्ज अजपम्य प्रदेशकिमिच्छिके बादमें
होता है । इसकी अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि कपक जीवके अयावरणके अन्तिम समबमें होती है ।
इतके बाद इसका सत्त्व अन्तमुहुर्त असल एक ही पाया जाता है, इसलिये इसका अजपम्य और उल्लुह
अतल अन्तमुहुर्त कहा है ।

१२६. आदरेसे नाकिम्येमें मिध्यात्व आर सात नोकयावोंकी अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि
अजपम्य और उल्लुह अंस एक समय है । अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि अजपम्य अतल अन्तमुहुर्त है
आर उल्लुह अंस कनीस सागर है । सम्मत्त्व, सम्ममिध्यात्व और अन्तानुबन्धीचतुष्ककी
अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि अजपम्य और उल्लुह अतल एक समय है । अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि
अजपम्य असल एक समय है और उल्लुह अतल कनीस सागर है । बार कपाय, मय और जुगुप्सकी
अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि अजपम्य और उल्लुह अतल एक समय है । अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि
अजपम्य असल एक समय कम इस हजार बर्ष है और उल्लुह अतल कनीस सागर है ।

विशेषार्थ—मिध्यात्व, मीचद और गर्पुमकबन्धी अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि मारक पर्याय-
में अन्तमुहुर्त काय भोप खलपर हा यद भी सम्भव है इतके बाद इनकी पूर्वा अन्तमुहुर्त अतल
एक अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि होती है । तथा वपितकमरिद्विधिते आकर मरकमें उत्पन्न हुए
जिम अन्तमुहुर्त अतल हा जाया है इसका पुन्यव दाम्य रति अरुति और शोकका अजपम्य प्रदेश-
किमिच्छि होती है और इनमें पूर्वे अन्तमुहुर्त अतल एक अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि रहती है, इसलिये
इन मय प्रवृत्तिर्षी अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि अजपम्य असल अन्तमुहुर्त कहा है । सम्मत्त्व आदि
द प्रवृत्तिर्षी अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि अजपम्य असल एक समय अनुल्लुहके समान पदित
कर सेना आदि है । बार कपाय, मय आर जुगुप्सकी अजपम्य प्रदेशकिमिच्छि मरक प्रदम समबमें

१ २७. पहमाए जाव छटि ति मिच्छत्त-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जह० पदे०
 जहण्णुक० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त-
 सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० एगस०,
 उक्क० सुगुक्कस्सट्ठिदीओ । वारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० ।
 अज० जह० जहण्णट्ठिदी समऊणा, उक्क० सगट्ठिदी । पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-
 सोगाणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदीओ ।
 १ २८. सत्तमाए मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेद--हस्स-
 रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहण्णुक० एगस० । अज० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क०
 तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण । णवरि अज० जह० एगस० ।

प्राप्त होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष कहा है। सब अट्टाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है।

१ २७ प्रथम पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंसे मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें उत्कृष्ट आयुवाले जीवके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्वामित्व बतलाया है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है। सम्यक्त्व आदि छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय सामान्य नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिए। आगे भी जहाँ यह काल इतना कहा हो वहाँ वह इसी प्रकार जानना चाहिए। वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है। पुरुषवेद आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रारम्भमें अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इन अट्टाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

१ २८ सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

वारसक-भय-दुर्गन्धार्णं जह० पदे० अहण्युह० एगस० । अम० जह० वारीसं
सामरावमाणि, उह० तेवीसं सामरोवमाणि ।

§ २६ तिरिक्कगलीए तिरिक्कसेयु मिच्छय०-वारसकाय-भय-दुर्गन्धित्ति-
नपुंसयवदार्णं जह० पदे० अहण्युह० एगस० । अम० जह० सुदाभमगाहर्णं, उह०
अर्णत्तकामसंसेय्या पांगत्तपरियट्टा । सम्मत-सम्माभिच्छयार्णं जह० पदे० अहण्युह०
एमस० । अम० जह० एगस०, उह० तिणि पस्सिरोवमाणि पस्सिरो० अर्णत्तसे०-
मागेण सादिरेयाणि । अर्णत्ताणु० पदह० जह० अहण्युह० एगस० । अम० जह०
एगस०, उह० अर्णत्तकामसंसेय्या पोभात्तपरियट्टा । पुरिसवद-इस्स रदि-अरदि
सोगार्णं जह० पदे० अहण्युह० एमस० । अम० जह० अंतोसु, उह० अर्णत्तकाम-
मसंसे० पो० परियट्टा ।

इसी प्रकार अन्यत्र और सम्ममिच्छात्काम मङ्गलानता आदि। इतनी विवेक है कि
अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य अल एक समय है। बाह्य कपाय मय और कुण्डली
अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य और उच्छ्र अल एक समय है। अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य
अल आईस सगर है और उच्छ्र अल तेवीस सगर है।

विशेषार्थ—संज्ञा टीकाओं में जोपके समाव ल्यामित्य है, इसलिये यहाँ मिच्छात्त
आदि बाह्य प्रकृतियोंकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य अल अन्तर्मुहूर्त वच जानेसे
कह उह अलप्रमाण कहा है। अन्यत्रविम्वित्ति मङ्गल प्रकृतियोंके समाव है वह स्पष्ट
ही है। मात्र इनकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अलनाकी अपेक्षा अजपम्य अल एक समय बन
जानेसे कह अलगासे कहा है। बाह्य कपाय, मय और कुण्डलीकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य
हामके प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य अल आईस सगर
कहा है। इन अलआईस प्रकृतियोंकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति उच्छ्र अल तेवीस सगर है वह
स्पष्ट ही है।

§ २६ तिरिक्कगलीए तिरिक्कसेयु मिच्छात्त, बाह्य कपाय, मय, कुण्डली अनेव और
अनु सक्केयकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य और उच्छ्र अल एक समय है। अजपम्य प्रदेश-
विम्वित्ति अजपम्य अल उच्छ्र अलप्रमाण प्रमाण है और उच्छ्र अल अजपम्य अल है जो अर्णत्तमात
पुद्गल परिवर्तनके कारण है। अन्यत्र और सम्ममिच्छात्कामकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य
और उच्छ्र अल एक समय है। अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य अल एक समय है और उच्छ्र
अल परमाण्व अर्णत्तमातर्ण मङ्गल अधिक तीन पश्य है। अनन्तामुक्कमीकुण्डलीकी अजपम्य
प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य और उच्छ्र अल एक समय है। अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य अल एक
समय है और उच्छ्र अल अल है जो अर्णत्तमात पुद्गल परिवर्तनके कारण है। पुरस्सेय हास्य
रति, अरति और रोक्ककी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य और उच्छ्र अल एक समय है। अजपम्य
प्रदेशविम्वित्ति अजपम्य अल अन्तर्मुहूर्त है और उच्छ्र अल अल है, जो अर्णत्तमात पुद्गल
परिवर्तनके कारण है।

विशेषार्थ—तिरिक्कसेयुकी अजपम्य मयस्मिति उच्छ्र अलप्रमाण है और अजपम्य मय-
स्मितिअपे जोपके मिच्छात्त आदि प्रथम पञ्चकमें कही गई प्रकृतियोंकी अजपम्य प्रदेशविम्वित्ति

§ ३०. पंचिदियतिरिक्खतियम्मि मिच्छत्तिथि-णुंसयवेद-वारसक०-भय-दुगुंझाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० खुदाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी । सम्पत्त-सम्मामि०--अणंताणु० चउक्काणमेवं चेव । णवरि अज० जह० एगस० । पंचणोकसायाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ३१. पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ताण मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंझ० जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० खुदाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० अंतोमु० ।

होती नहीं, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल जुल्लकभव-ग्रहणप्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल है, इसलिए उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। यहाँ सम्यक्त्वद्विककी एक समय तक सत्ता उल्लेखनाकी अपेक्षा वन जाती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा जो पल्यके असंख्यातवे भागप्रमाण काल तक इनकी उल्लेखना कर सत्त्व नाश हुए बिना तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होकर और सम्यक्त्वको उत्पन्न कर अन्त तक इनकी सत्ता वनाये रखते हैं उनके इतने काल तक इनकी सत्ता दिखलाई देनेसे यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवे भाग अधिक तीन पल्य कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय पहले अनेक बार घटित करके वतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तथा इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वके समान है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार पुरुषवेद आदि पाँचकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। तथा इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रथम नरकके समान घटित कर लेना चाहिए।

§ ३० पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल सामान्यसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें जुल्लकभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भन्न इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है। पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ अन्य सब स्पष्टीकरण सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कर लेना चाहिए। केवल दो बातोंमें विशेषता है। एक तो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंकी जघन्य भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें मिथ्यात्व आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति-का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। दूसरे इन तीनों प्रकारके तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है और इतने काल तक यहाँ अर्द्धाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति हुए बिना भी सत्ता रह सकती है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है।

§ ३१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका

एवं सम्पत्-सम्पामिच्छात्तार्ण । गपरि अम० अह० एगसमभो । सप्तशोक० अह० पद० अहण्युक्त० एगस० । अम० अहण्युक्त० अंतोद्यु० । एवं गणुसमभयत्तार्ण ।

१३२ मनुसतिपत्तिमि मिच्छात्त-वारसक०-अवशोकसायार्ण अह० पदे० अहण्युक्त० एगसमभो । अम० अह० सुशामन० अंतोद्यु०, उक्त० सगदिदी । सम्पत् सम्पामि -मर्णतापु०-अवकाशं अह० पदे० अहण्युक्त० एगस० । अम० अह० एगस०, उक्त० सगदिदीभो ।

अथन्य काल एक समय कम कुछक मन्त्रप्रत्ययप्रमाण है और उक्त काल अन्तर्गृहीतप्रमाण है । इसी प्रकार सम्पत्त्व और सम्पामिच्छात्तार्ण मनु शानना चाहिए । इसी विशेषता है कि इनकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल एक समय है । साथ नोकपायोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य और उक्त काल एक समय है । अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य और उक्त काल अन्तर्गृहीत है । इसी प्रकार मनुष्य अपराधोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जहाँ मिच्छात्त आदि जमीन प्रकृतियोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका मन्त्रे प्रकृत समयमें होती है, इसलिये इसका अवशपत्य काल एक समय कम कुछकमन्त्रप्रमाण का है । सम्पत्त्वकालके अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल एक समय अंतोद्युतकी अपेक्षा प्राप्त होता है यह स्पष्ट ही है । तथा साथ नोकपायोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका मन्त्रप्रत्ययके अन्तर्गृहीत बाह्य होती है, इसलिये इनकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल अन्तर्गृहीत का है । तथा जहाँ सभी प्रकृतियोंकी उक्त प्रदेराविमर्शिका उक्त काल अन्तर्गृहीत है यह स्पष्ट ही है ।

१३२ मनुष्याधिकर्म मिच्छात्त वारस कपाय और नौ नोकपायोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य और उक्त काल एक समय है । अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल सामान्य मनुष्योंमें कुछक मन्त्रप्रमाण और शेष दोमें अन्तर्गृहीतप्रमाण तथा तीनोंमें उक्त काल अपनी अपनी अवस्थितिप्रमाण है । सम्पत्त्व, सम्पामिच्छात्त और अनन्तानुबन्धीकृत्यकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य और उक्त काल एक समय है । अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल एक समय है और उक्त काल अपनी अपनी अवस्थिति प्रमाण है ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंकी अवशपत्य स्थिति अन्तर्गृहीतप्रमाण शेष दोकी अवस्थिति पूर्वकोटि अधिक तीन पदप्रमाण होती है, इसलिये इनमें मिच्छात्त आदि बाह्य प्रकृतियोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल सामान्य मनुष्योंमें कुछकमन्त्रप्रमाण शेष दोमें अन्तर्गृहीतप्रमाण और उक्त काल तीनोंमें अवस्थितिप्रमाण का है, क्योंकि इन तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अवशपत्यके समय पदार्थान्त्र स्थितमें एक प्रकृतियोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका होती है, इसलिये जहाँ पर इन प्रकृतियोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका उक्त कालके प्राप्त होनी कोई काल नहीं आती । अब जहाँ शेष उक्त प्रकृतियों को इनमेंसे किन जीवोंमें सम्पत्त्व और सम्पामिच्छात्तकी अंतोद्युतमें एक समय शेष उक्त पर मनुष्य पर्याप्त प्राप्त की है उनके इन दो प्रकृतियोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल एक समय बन जाय है । तथा जो मनुष्य अनन्तानुबन्धीकृत्यकी निर्योक्तता करके मनुष्य पर्याप्तमें एक समय शेष उक्त पर साक्षरानुबन्धानकी प्राप्त हात हैं उनके इनकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल एक समय बन जाता है इसलिये जहाँ इन उक्त प्रकृतियोंकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका अथन्य काल एक समय का है । जहाँ इनकी अवशपत्य प्रदेराविमर्शिका उक्त काल अवस्थिति-

§ ३३. देवगईए देवेसु मिच्छत्तिस्थि-णवुंसयवेदानं जह० पदे० जहणुक्कस्स० एगस० । अज० जह० दसवस्ससहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवमणंताणु०-चउक्क०-सम्म० सम्मामिच्छत्ताणं । णवरि अज० जह० एगस० । वारसक०-भय-दुगुंछाणं मिच्छत्तभंगो । पंचणोक० जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमुहु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

§ ३४. भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छत्तिस्थि-णवुंसयवेदानं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० जहणुद्विदी, उक्क० उक्कस्सद्विदी । सम्पत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्काणं जह० पदेस० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० उक्क०-द्विदी । वारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० जहणुद्विदी समयूणा, उक्क० उक्कस्सद्विदी । पंचणोक०

प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होकर अभाव न हो जाय ऐसा करते हुए उनका सत्त्व बनाये रखना चाहिए ।

§ ३३ देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विषयसे जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है । बारह कपाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—देवोंमें स्वामित्वको देखते हुए मिथ्यात्व, बारह कपाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर बन जाता है, इसलिए यह काल उक्त प्रमाण कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच नोकपायोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र इनके अजघन्य प्रदेशसत्त्वर्भके जघन्य कालमें अन्तर है, इसलिए वह अलगसे कहा है । उनमेंसे प्रारम्भकी छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय तो मनुष्योंके समान यहाँ भी घटित हो जाता है । मात्र पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति देवोंमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्तवाद सम्भव है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ३४ भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । बारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है ।

षट्० पदे० महण्णुक० एगस० । अम० जह० अंतोसु०, चक० सगदिदीमो ।

१३३ अणुरिसादि भाव अवरारदो वि मिच्छत्त-सम्मापि० इत्थि-उत्तुंसप-
वदानं जह० पदे० महण्णुक० एगस० । अम० ज० महण्णदिदी, चक०
चक०स्सदिदी । सम्पत्त० जह० पदे० महण्णुक० एगस० । अम० जह० एमस०,
चक० सगदिदी । एवमणत्थणु० भवत्त० इत्थ-रदि-अरदि-सोगाण । णपरि अम०
जह० अंतोसु० । बारसक०-अुरिस मय-अुत्तुंछात्तं जह० पदे० महण्णुक० एगस० ।
अम० जह० महण्णदिदी समत्ता, चक० सगदिदी ।

और बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकपायोकी बचन प्रदेरा-
विमिच्छत्त बचन और बहुत काल एक समय है । अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ बाह्य कथा, मय और अणुप्राकी बचन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य प्रम
समयमें होती है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त एक समय कम अपनी
अपनी बचन्य स्थितिप्रमाण कहा है । दोष अत्त सुगम है क्योंकि उसका सामान्य दोषमें
स्वप्निकार्य आये हैं । यही प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए ।

१३५ अणुरिसादे काल अपराविच्छत्तके दोषमें मिच्छत्त, सम्मिच्छत्त, अविच्छत्त
और नपुंसकवैरकी बचन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य और बहुत काल एक समय है । अजपन्य
प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त अपनी अपनी बचन्य स्थितिप्रमाण है और बहुत काल अपनी
अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है । सम्पत्तकी बचन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य और बहुत
काल एक समय है । अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त एक समय है और बहुत काल
अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । यही प्रकार अनन्तमुहूर्तकी बचन्य, इत्थ एति, अरति और
शोककी अपेक्षा अत्त जानना चाहिए । इसकी विशेषता है कि इनकी अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त
बचन्य अत्त अन्तर्मुहूर्त है । बाह्य कथा, मुहूर्तमेव भव और अणुप्राकी बचन्य प्रदेराविमिच्छत्त-
का बचन्य और बहुत काल एक समय है । अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त एक
समय कम अपनी अपनी बचन्य स्थितिप्रमाण है और बहुत काल अपनी अपनी बहुत
स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिच्छत्त आदि की बचन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य आनुवात जीवोंके
अत्तके प्रथम समयमें सम्पत्त नहीं है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त
अपनी अपनी बचन्य स्थितिप्रमाण और बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण कहा
है । अन्तर्मुहूर्तके अत्तमें एक समय दोष रहने पर ऐसा जीव मरकर यहाँ उत्पन्न हो सकता है
इसलिये सम्पत्तकी अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त एक समय कहा है । अनन्तमु-
हूर्तकी बचन्य आदि आठ प्रवृत्तियोंकी बचन्य प्रदेराविमिच्छत्त अत्तके अन्तर्मुहूर्त बाद प्राप्त होती है,
इसलिये इसकी अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बचन्य अत्त अन्तर्मुहूर्त कहा है । बाह्य कथा आदि
की बचन्य प्रदेराविमिच्छत्त अत्तके प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त-
का बचन्य अत्त एक समय कम अपनी अपनी बचन्य स्थितिप्रमाण कहा है । इन सब
प्रवृत्तियोंकी अजपन्य प्रदेराविमिच्छत्त बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है यह
स्पष्ट ही है ।

§ ३६. सन्वद्वसिद्धिमि मिच्छ०-सम्माभि०-वारसक०-इत्थि-पुरिस-णवुंसय-वेद-भय-दुगुंझाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० तेत्तीसं सागरो-वमाणि समऊणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरो० । सम्म० जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । अणंताणु० चउक्क०-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोपु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं जाणिदूण णेदव्व जाव अणाहारि त्ति ।

एवं कालाणुगमो समतो ।

❀ अंतरं ।

§ ३७. पइज्जामुत्तमेदं सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मियंतरं जहणुक्कस्सेण अणंत-कालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा ।

§ ३६. सर्वार्थसिद्धिमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक-वेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इस प्रकार जान कर अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होनेसे इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर कहा है । कृतकृत्यवेदकका एक समय काल यहाँ उपलब्ध हो सकता है, इसलिए सम्यक्त्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्भव है, इसलिए उसका जघन्य काल अन्तर्-मुहूर्त कहा है । सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है । यहाँ तक जो काल कहा है उसे देखकर वह अनाहारक मार्गणातक घटित कर लेना चाहिए, इसलिए उसे इसके समान ले जानेकी सूचना की है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

❀ अन्तर ।

§ ३७. यह प्रतिज्ञा सूत्र सुगम है ।

❀ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है ।

अह० पदे० अहण्णुक० एगस० । अज० अह० अंतोह०, उह० सगहिदीमो ।

। ३५ अणुहिसादि जाव अवरपदो सि मिच्छत्त-सम्मामि०-इत्थि-शुसय वेदाणं अह० पदे० अहण्णुक० एगस० । अज० अ० अहण्णहिदी, उह० उहण्णसहिदी । सम्मत्त० अह० पदे० अहण्णुक० एगस० । अज० अह० एगस०, उह० सगहिदी । एवमणंताणु० अहण्णुक०-इत्त-रदि-अरदि-सोगाणं । अवरि अज० अह० अंतोह० । बारसक० पुरित्त मय-इण्णंताणं अह० पद० अहण्णुक० एगस० । अज० अह० अहण्णहिदी समउण्ण, उह० सगहिदी ।

और छह्य कस अपनी अपनी छह्य स्थितिमाय है । पाँच नोकपाबोंकी जगह प्रवेश-विम्वित्त अण्ण अहण्ण कस एक समय है । अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस अहण्णमूर्तप्रमाण है और छह्य कस अपनी अपनी छह्य स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ बाय कपाव अय और कुण्णकी जगह प्रवेशविम्वित्त मक्के प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस एक समय कम अपनी अपनी जगह स्थितिप्रमाण कहा है । शेष कस सुगम है, क्योंकि कस सामान्य देवोंमें स्थितिप्रमाण आये हैं । क्सी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए ।

। ३६ अनुविरासे लेकर अपरचित्त लक्के देवोंमें मिच्छात्त, सम्ममिच्छात्त अन्तेर और नुत्तमोत्तरेकी जगह प्रवेशविम्वित्त अण्ण और छह्य कस एक समय है । अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस अपनी अपनी जगह स्थितिप्रमाण है और छह्य कस अपनी अपनी छह्य स्थितिप्रमाण है । सम्मत्तकी जगह प्रवेशविम्वित्त अण्ण और छह्य कस एक समय है । अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस एक समय है और छह्य कस अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । क्सी प्रकार अनन्ताणुवणीणुण्ण, इत्थ, एत्ति, अरत्ति और शोक्की अण्ण कस जानना चाहिए । इतनी विवेक है कि इनकी अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस अहण्णमूर्त है । बाय कपाव पुरुषेव अय और कुण्णकी जगह प्रवेशविम्वित्त अण्ण और छह्य कस एक समय है । अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस एक समय कम अपनी अपनी जगह स्थितिप्रमाण है और छह्य कस अपनी अपनी छह्य स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिच्छात्त आदिकी जगह प्रवेशविम्वित्त अण्ण अनुविरासे जीवोंके मक्के प्रथम समयमें सम्मत्त मूर्त है, इसलिये इनकी अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस अपनी अपनी जगह स्थितिप्रमाण और छह्य कस अपनी अपनी छह्य स्थितिप्रमाण कहा है । अहण्णमूर्तके अन्तमें एक समय शेष कस पर देख जीव मक्के यहाँ अण्ण हो करता है, इसलिये सम्मत्तकी अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस एक समय कहा है । अनन्ताणुवणीणुण्ण आदि आठ मूर्तियोंकी जगह प्रवेशविम्वित्त मक्के अहण्णमूर्त बाय मात होती है, इसलिये इनकी अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस अहण्णमूर्त कहा है । बाय कपाव आदि की जगह प्रवेशविम्वित्त मक्के प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस एक समय कम अपनी अपनी जगह स्थितिप्रमाण कहा है । इन सब मूर्तियोंकी अहण्ण प्रवेशविम्वित्त अण्ण कस अपनी अपनी छह्य स्थितिप्रमाण है या स्थ होवे ।

❀ अंतरं जहणयं जाणिदूण णेदव्वं ।

§ ४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, जहणपदेसविहत्तियाणं सव्वेसिं पि अंतराभावादो ।

एवमंतरं समत्तं ।

४२. संपहि चुण्णिमुत्तेण देसामासिएण सूइदमत्थमुच्चारणाइरिएण परुविदं वत्तइस्सामो । अपुणरुत्तथो चेव किण्ण उच्चदे ? ण, कत्थ वि चुण्णिमुत्तेण उच्चारणाए भेदो अत्थि त्ति तव्वभेदपदुप्पायणदुवारेण पउणरुत्तियाभावादो ।

§ ४३. अतर दुविह—जहणमुक्कस्सय च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० अट्ठणोक० उक्क० पदेस-विहत्तिअंतरं जहणुक० अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । अणुक० जहणुक० एगस० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० पदेसविह० णत्थि अंतरं । अणुक० पदे० जह० एगस०, उक्क० उवडुपोगलपरियट्ठं । अणंताणु० च उक्क० उक्क० पदे० जहणुक० अणत० मसंखे०-पो० परियट्ठा । अणुक० जह० एगस०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पुरिसवेद-चदुसंज० उक्क० पदे० णत्थि अंतर । अणुक० पदे० जहणुक० एगस० ।

❀ जघन्य अन्तरकाल भी जानकर ले जाना चाहिए ।

§ ४१ इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि सभी जघन्य प्रदेशविभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४२ अब चूर्णिसूत्रके द्वारा देशामर्षकरूपसे सूचित हुए जिस अर्थका उच्चारणाचार्यने कथन किया है उसे बतलाते हैं ।

शंका—अपुनरुक्त अर्थको ही क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कहीं पर चूर्णिसूत्रसे उच्चारणमें भेद है, इसलिए उस भेदके कथन द्वारा पुनरुक्त दोष नहीं आता । अर्थात् उसके पुनः कथन करने पर भी वह अपुनरुक्तके समान हो जाता है ।

§ ४३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है । पुरुषवेद और चार संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

§ ३८= गुणितकर्मसियस्स अगुणितकर्मसियमावमुत्तमिय अहण्णेन पक्कस्सेण वि अण्णत्थेण कात्थेण विणा पुणो गुणित्थमावेण परिणमपसत्तीए ममावाधो । अहण्णेण अत्तस्सेखा खोगा वि अंतरं किण्ण पक्कविदं ? ज, तस्सुपदेसस्स अपवाइत्थमाणत्तजाणावण्ह तत्पक्कवाधो ।

⊗ एवं सेसाण कम्माण येवम्भ ।

§ ३९. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुत्तदे । तं वडा-अइकसाप-अइजोइसायानं मिच्छत्तमं । अणत्ताणु० पक्क० पक्क० पदे० मिच्छत्तमं ।

⊗ यावरि सम्मत-सम्माभिच्छत्ताय पुरिसवेव-अनुसज्जवाच च उहस्सपदेसविहत्तिअंतरं जत्थि ।

§ ४०. इदो ! खवमसेहीए ससुप्पण्णवाधो ।

एवमुक्त्तस्सपदेसविहत्तिअंतरं समत्तं ।

§ ३८. क्योंकि जो गुणितकर्मशिल्प जीव अगुणितकर्मशिल्पमात्रको प्राप्त होता है उसके अपन्य और उत्तम दोनों प्रकार अनन्त फलके बिना पुनः गुणितकर्मशिल्पसे परिश्रमन करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती ।

शंका—गुणितकर्मशिल्प जीवका अपन्य अन्तर अर्त्तक्यात लोभमात्र क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह उपदेस अपवाइत्थमाय है इस वाक्य ज्ञान करानेके लिए वह नहीं कहा ।

विशेषार्थ—पहले काज प्रकृष्टाके समय चूर्णिसूत्रमें अपन्य उपदेसके अनुसार मिष्वात्वके अनुत्तम प्रदेशस्तर्कका अपन्य फल अर्त्तक्यात लोभमात्र कह आये हैं इसलिये यहाँ यह शंका की गई है कि वही उपदेसके अनुसार मिष्वात्वके उत्तम प्रदेशस्तर्कका अपन्य फल अर्त्तक्यात लोभमात्र भी कहना चाहिए था । धीरेसेन स्वामीने इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि वह उपदेस अपवर्त्तमान है वह विरलतमा आवश्यक था इसलिये चूर्णिसूत्रनामक यहाँ कमत्र निर्देश नहीं किया है ।

⊗ इसी प्रकार दोष कर्मोंका अन्तरकास जानना चाहिए ।

§ ३९. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—आठ कथाय और आठ नाक्यायोंका भङ्ग मिष्वात्व के समान है । अनन्तानुगर्भीकानुष्णकी उत्तम प्रदेशविमर्शिका भङ्ग मिष्वात्वके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर अनन्तानुगर्भीकानुष्णकी आठ कथाय और आठ नाक्यायोंके भङ्ग परिणाम न करके अनन्तानुगर्भीकानुष्णकी उत्तम प्रदेशविमर्शिका भङ्ग मिष्वात्वके समान है यह कहा है ता उनका ध्यान यह है कि अनन्तानुगर्भीकानुष्णकी अनुत्तम प्रदेशविमर्शिका अन्तराध्यासे मिष्वात्वसे कुछ अन्तर है यह धियवाना आवश्यक था इसलिये धीरेसेन स्वामीने कमत्र असंगम निर्देश किया है ।

○ इसी विरापता है कि सम्पत्त्व, सम्पत्तिमिष्वात्व, पुक्कपक्क और चार संवत्सकी उत्तम प्रदेशविमर्शिका अन्तरकास नहीं है ।

§ ४०. क्योंकि इनकी उत्तम प्रदेशविमर्शिका उपरमेष्ठिम उपाय होती है ।

इस प्रकार उत्तम प्रदेशविमर्शिका अन्तरकास समाप्त हुआ ।

❀ अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णोदच्चं ।

§ ४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, जहण्णपदेसविहत्तियाणं सव्वेसिं पि अंतराभावादो ।

एवमंतरं समतं ।

४२. संपहि चुण्णिमुत्तेण देसामासिएण सूइदमत्थमुच्चारणाइरिएण परुविदं वत्तइस्सामो । अपुणरुत्तत्थो चेव किण्ण बुच्चदे ? ण, कत्थ वि चुण्णिमुत्तेण उच्चारणाए भेदो अत्थि ति तव्वेदपटुप्पायणदुवारेण पउणरुत्तियाभावादो ।

§ ४३. अंतरं दुविह—जहण्णमुक्कस्सय च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० अट्ठणोक० उक्क० पदेस-विहत्तिअंतरं जहण्णुक० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणुक० जहण्णुक० एगस० । सम्मत०-सम्मामि० उक्क० पदेसविह० णत्थि अंतरं । अणुक० पदे० जह० एगस०, उक्क० उवट्ठपोग्गलपरियट्ठं । अणंताणु० च उक्क० उक्क० पदे० जहण्णुक० अणंत० मसंखे-पो० परियट्ठा । अणुक० जह० एगस०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पुरिसवेद-चदुसंज० उक्क० पदे० णत्थि अंतर । अणुक० पदे० जहण्णुक० एगस० ।

❀ जघन्य अन्तरकाल भी जानकर ले जाना चाहिए ।

§ ४१ इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि सभी जघन्य प्रदेशविभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४२. अब चूर्णिसूत्रके द्वारा देशामर्षकरूपसे सूचित हुए जिस अर्थका उच्चारणाचार्यने कथन किया है उसे बतलाते हैं ।

शंका—अपुनरुक्त अर्थको ही क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कहीं पर चूर्णिसूत्रसे उच्चारणमें भेद है, इसलिए उस भेदके कथन द्वारा पुनरुक्त दोष नहीं आता । अर्थात् उसके पुनः कथन करने पर भी वह अपुनरुक्तके समान हो जाता है ।

§ ४३ अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोक्षायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्थ पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है । पुरुषवेद और चार सज्जलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

§ ३८ शुद्धिकर्मसिद्धयस्तु अशुद्धिकर्मसिद्धयमात्रमुपलभ्य नृणां
वदन्त्येव वि अनेन कालेन विना पुनो शुद्धिमात्रेण परिणमजसत्तीए अभावादो ।
अहणेन असंवेद्या सोमा वि अंतरं किंवा पकविद् ? न, तस्सुवदेसस्तु
अपवाइस्समागतमात्रेण उदपक्यमादो ।

⊗ एवं सेसाथ कम्माण खेवन्व ।

§ ३९, पदस्तु घुचस्तु अतो बुधदे । तं महा-अडकसाय अडनोकसायानं
मिच्छावर्मो । अर्णतापु० वरु० उ० पदे० मिच्छावर्मण ।

⊗ अवरि सम्मत-सम्मानिच्छताय पुरिसवेव-अमुसज्जणाय न
उदस्तपदेसविहत्तिअतरं णत्थि ।

§ ४०, कुवो ! अयमसिद्धीए ससुवण्णमादो ।

एवमुदस्तपदेसविहत्तिअतरं समर्थ ।

§ ३८, क्योंकि जो शुद्धिकर्मारिक्त जीव अशुद्धिकर्मारिक्तकर्मको प्राप्त होता है उसके
अवस्था और उत्पन्न होने में अन्तर अभाव के लिये पुनः शुद्धिकर्मारिक्तकर्मसे परित्याग
करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती ।

शङ्क—शुद्धिकर्मारिक्त जीवका अवस्था अन्तर अस्तित्वात् लोकप्रमाण क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह अवस्था अपवाइस्समाय है इस बातका दाव करनेके लिए वह
नहीं कहा ।

विशेषार्थ—पहले कहा प्रकृत्याके समय बुद्धिसुत्रमें अन्व उपदेसके अनुसार
मिथ्यात्वके अनुत्पन्न प्रदेरासत्कर्मका अवस्था अन्त अस्तित्वात् लोकप्रमाण वह आते हैं इसलिये
यहाँ यह शङ्क की गई है कि वही अवस्थाके अनुसार मिथ्यात्वके उत्पन्न प्रदेरासत्कर्मका अवस्था अन्त
अस्तित्वात् लोकप्रमाण भी कहना चाहिए था । बीरसेन स्वामीने इस शङ्कका जो समाधान किया
है उसका भाव यह है कि वह अवस्था अयमस्मान् है वह विलक्षणता आवश्यक था इसलिये बुद्धि-
सुत्रकरने वहाँ प्रकृत्य विवेका नहीं किया है ।

⊗ इसी प्रकार छेप कर्मोंका अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ ३९, अब इस सूत्रका अर्थ यह है—आठ कथय और आठ लोकपाथेयं यह मिथ्यात्व
के समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्करी उत्पन्न प्रदेराविमलिका यह मिथ्यात्वके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर अनन्तानुबन्धीचतुष्करी आठ कथय और आठ लोकपाथेयोंके
सब परिणामना न करके अनन्तानुबन्धीचतुष्करी उत्पन्न प्रदेराविमलिका यह मिथ्यात्वके समान
है यह कहा है सो प्रकृत्य कारण यह है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्करी अनुत्पन्न प्रदेराविमलिके
अन्तरकालमें मिथ्यात्वसे कुछ अन्तर है वह विलक्षणता आवश्यक था इसलिये बीरसेन स्वामीने
इसका अवगत विवेका किया है ।

⊗ इतनी विग्रहता है कि सम्प्रत्यक्ष, सम्प्रतिमिथ्यात्व, प्रकृत्यवेद और चार
संभवमन्त्री उत्पन्न प्रदेराविमलिका अन्तरकाल नहीं है ।

§ ४०, क्योंकि इनकी उत्पन्न प्रदेराविमलिका उपक्रमणिये उत्पन्न होती है ।

इस प्रकार उत्पन्न प्रदेराविमलिका अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

ॐ अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णेदव्वं ।

§ ४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, जहण्णपदेसविहत्तियाणं सव्वेसिं पि अंतराभावादो ।

एवमंतरं समत्तं ।

४२. संपहि चुण्णिमुत्तेण देसामासिएण सूइदमत्थमुच्चारणाइरिएण परुविदं वत्तइस्सामो । अपुणरुत्तत्थो चेव किण्ण वुच्चेदं ? ण, कत्थ वि चुण्णिमुत्तेण उच्चारणाए भेदो अत्थि ति तव्वेदपदुप्पायणदुवारेण पउणरुत्तियाभावादो ।

§ ४३. अतर दुविह—जहण्णमुक्कस्सय च । उक्कस्सए पयद । दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० अट्ठणोक० उक्क० पदेस-विहत्तिअंतरं जहण्णुक० अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । अणुक० जहण्णुक० एगस० । सम्पत्त०-सम्पामि० उक्क० पदेसविह० णत्थि अंतरं । अणुक० पदे० जह० एगस०, उक्क० उवट्ठपोगलपरियट्ठं । अणंताणु० चउक्क० उक्क० पदे० जहण्णुक० अणत० मसंखे०-पो० परियट्ठा । अणुक० जह० एगस०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पुरिसवेद-चदुसंज० उक्क० पदे० णत्थि अंतर । अणुक० पदे० जहण्णुक० एगस० ।

ॐ जघन्य अन्तरकाल भी जानकर ले जाना चाहिए ।

§ ४१. इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि सभी जघन्य प्रदेशविभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४२. अब चूर्णिसूत्रके द्वारा देशामर्षकरूपसे सूचित हुए जिस अर्थका उच्चारणाचार्यने कथन किया है उसे वतलाते हैं ।

शंका—अपुनरुक्त अर्थको ही क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कहीं पर चूर्णिसूत्रसे उच्चारणमें भेद है, इसलिए उस भेदके कथन द्वारा पुनरुक्त दोष नहीं आता । अर्थात् उसके पुनः कथन करने पर भी वह अपुनरुक्तके समान हो जाता है ।

§ ४३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कपाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है । पुरुषवेद और चार सज्जलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

१४४ आदौ गेहपुत्रस्य मिथ्या-वारसक-अण्णोक्त-पक्ष-पदे-गति
अंतरं । अणु-पक्ष-गहण-पक्ष-पक्ष-पक्ष । सम्म-सम्माभि-अण्णोक्त-पक्ष
पक्ष पदे गति अंतरं । अणु-पक्ष-गहण-पक्ष-पक्ष-पक्ष । सम्म-सम्माभि-
देसु-गति । इति पुरिस-अणु-पक्ष-गहण-पक्ष-पक्ष-पक्ष-पक्ष-पक्ष-पक्ष-पक्ष-
सप्तमा पुरीष ।

समय ५ ।

विशेषार्थ—गुणितकर्मादिभिः एक बार समाप्त होकर पुनः उत्पन्न होकर
अनन्त काल लगाता है, इसलिये यहाँ मिथ्यात्व आदि सत्रह प्रकृतियोंकी बहुत प्रदेशविमर्शिका
अनन्त और बहुत अनन्त काल का है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी बहुत प्रदेशविमर्शिका
अनन्त अनन्त इसी प्रकार गति कर लेता आदि । तथा मिथ्यात्व आदि सत्रह प्रकृतियोंकी
अनन्त प्रदेशविमर्शिका एक समयके लिये होती है, इसलिये इनकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त
और अनन्त अनन्त एक समय का है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क, बार संवत्सर और
पुरोहितकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त और अनन्त अनन्त एक समय का है । अनन्त
अनन्त । सम्मत्त्व और सम्मत्त्वमिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियाँ हैं इसलिये इनका कर्मसे कर्म
एक समय एक और अधिकसे अधिक कर्माँ पुरोहित परिवर्तनप्रमाण का एक समय में पाया
जाय वह सम्मत् है, इसलिये इनकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त अनन्त एक समय और
अनन्त अनन्त कर्माँ पुरोहित परिवर्तनप्रमाण का है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये विस्तृतानु
प्रकृतियाँ हैं । इनका सत्य अधिकसे अधिक कर्म दो कर्माँ सागर का एक नहीं पाया
जाय इसलिये इनकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त अनन्त एक कालप्रमाण का है । सम्मत्त्व
और सम्मत्त्वमिथ्यात्व अनन्त प्रदेशसत्य इतिमोक्षकी कर्माँके समय तथा पुरोहित और बार
संवत्सरका अनन्त प्रदेशसत्य आदिमोक्षकी कर्माँके समय होता है, इसलिये इनकी अनन्त प्रदेश-
विमर्शिका अनन्त अनन्त न प्राप्त होनेसे कर्म विवेक किया है ।

१४५ आदौ गेहपुत्रस्य मिथ्यात्व वायु कषाय और वह मांस्ययोकी बहुत प्रदेश-
विमर्शिका अनन्त अनन्त है । इनकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त और अनन्त अनन्त
एक समय है । सम्मत्त्व, सम्मत्त्वमिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनन्त प्रदेशविमर्शिका
अनन्त अनन्त है । अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त अनन्त एक समय है और अनन्त अनन्त
कर्म कर्म लेती सागर है । विशेष पुरोहित और नपुंसकयोकी अनन्त और अनन्त प्रदेश-
विमर्शिका अनन्त अनन्त है । इसी प्रकार सातवीं प्रकृतियों में वायुता आदि ।

विशेषार्थ—गर्भ में गुणितकर्माँ की वृद्धि के अनन्त अनन्त काल से पद पर मिथ्यात्व
आदि कभीस प्रकृतियोंकी बहुत प्रदेशविमर्शिका होती है । यह यहाँ एकपर्यायमें ही बार सम्मत् नहीं
है, इसलिये यहाँ एक प्रकृतियोंकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त अनन्त विवेक किया है ।
सम्मत्त्वमिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त अनन्त
की वृद्धि है । तथा सम्मत्त्व और तीनों वेदोंकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका वृद्धि के प्रथम समकर्म
होती है, इसलिये इनकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त अनन्त विवेक किया है । यह एक अनन्त-
का विचार से मिथ्यात्व आदि कभीस प्रकृतियोंकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त सम्मत् होती है
प्रमाण इनकी अनन्त प्रदेशविमर्शिका अनन्त और अनन्त अनन्त एक समय का है । सम्मत्त्व-
वृद्धि वृद्धि प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुबन्धीचतुष्क विस्तृतानु प्रकृतियाँ हैं । यहाँ इनका

§ ४५. पदमाए जाव छटि ति मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्कस्स-पदे० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं । अणुक० पदे० जह० एगस०, उक्क० सगसगट्ठिदीओ देसूणाओ । अणंताणु०चउक्क० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं । अणुक० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा ।

§ ४६. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छ०-वारसक०-अट्ठणोक० उक्कस्सा-णुक्कस्सपदे० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० ओघ । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । इत्थिवेद०

सत्त्व कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागर तक न हो यह सम्भव है, अतः यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । मात्र सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति मध्यमें होती है, इसलिए भी इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है और अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी विसंयोजना एक समयके लिए नहीं होती, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षासे ही प्राप्त करना चाहिए । तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है । यह सब अन्तर परूपणा सातवें नरकमें अविकल वन जाती है, इसलिए यहाँ सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ४५. प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल न प्राप्त होनेसे उसका निषेध किया है । मात्र विसंयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण वन जाता है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालका अलगसे विधान किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म एकवार ही प्राप्त होता है, इसलिए इसके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा यह आयुमें अन्तर्मुहूर्त जाने पर प्राप्त होता है और ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उद्वेलना प्रकृतियाँ होनेसे वहाँ इनका कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण काल तक सत्त्व न रहे यह सम्भव है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है ।

§ ४६ तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और आठ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट

उक्तं नत्ति अंतरं । मणुक्कं अहण्णुक्कं एगसं । एवं पंषिदियतिरिक्खत्तिपत्तं ।
गवरि सम्मं-सम्मामिं । उक्तं नत्ति अंतरं । मणुक्कं अहं एगसं, उक्तं
तिणिग पत्तिदोवपाणि पुप्फकोटिपुपत्तेज्यवहियाणि । पंषिदियतिरिक्खत्तमपत्तं । अद्वा
पीत्त पयरीगण्णत्ताणुक्कं नत्ति अंतरं ।

§ ४७ मणुसगदीए मणुस्तेसु मिच्छं-अद्दकसाय णांसं इत्त रदि-अरदि
साग-पय दुरांछाणं उक्तसाणुक्कत्तं नत्ति अंतरं । सम्मं-सम्मामिं-अर्जत्ताणु-
चउक्तं पंषिदियतिरिक्खत्तममो । अहुसंभसं पुरिसं-इत्तिपदेदं उक्तं नत्ति अंतरं ।
मणुक्कं अहण्णुक्कं एगसं । एवं मणुसपक्कात्त-मणुसिणीजं । मणुसअपत्तं पंषिदिय

प्रदेराविमिच्छिअ जपम्भ अन्तर अन्तर्मुहूर्तं है और उक्त अन्तर कुछ कम तीन पत्त है । कीबेरकी
उक्त प्रदेराविमिच्छिअ अन्तरकात्त नहीं है । अनुत्त प्रदेराविमिच्छिअ जपम्भ और उक्त अन्तर
एक समय है । इसीप्रकार पञ्च त्रिय त्रियैज्जिकीं जानना चाहिए । इतनी विरोध है कि इनमें
सम्पत्त और सम्पत्तिप्यात्तकी उक्त प्रदेराविमिच्छिअ अन्तरकात्त नहीं है । अनुत्त प्रदेरा-
विमिच्छिअ जपम्भ अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर पूर्वकोटि पूरकत्त अधिक तीन पत्त
है । पञ्च त्रिय त्रियैज्ज अपवात्तकीं अद्वांस म्भितियोंकी उक्त और अनुत्त प्रदेराविमिच्छिअ
अन्तरकात्त नहीं है ।

विरोधार्थ—यहाँ प्रथम जपम्भ नहीं गई म्भितियोंकी उक्त प्रदेराविमिच्छि अन्तर होनेके
प्रथम समयमें होती है, इसलिय इनकी उक्त और अनुत्त प्रदेराविमिच्छि अन्तरकात्त निषेध
किया है । ओपमें सम्पत्त और सम्पत्तिप्यात्तके अन्तरकात्त जो म्भ का है वह यहाँ
अधिकत्त बन जाता है, इसलिय उसे ओपके समान जाननेकी सूचना की है । अन्तर्मुहूर्तकी-
उक्त प्रदेराविमिच्छिअ अन्तरकात्त सम्भव नहीं है वह गुणितकर्मप्रविधिके दोननेसे
स्पष्ट हो जाता है । पर वे विसंयोजना म्भितियाँ हैं, इसलिय यहाँ इनके अनुत्त प्रदेराविमिच्छिअ
जपम्भ अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उक्त अन्तर कुछ कम तीन पत्त का है । यहाँ कीबेरकी उक्त
प्रदेराविमिच्छिअ मोगमूमिमें पत्तका अर्थात्तावर्ती मागप्रमाण अज्ञाने पर होता है, इसलिय इसकी
अनुत्त प्रदेराविमिच्छिअ जपम्भ और उक्त अन्तरकात्त एक समय का है । इसकी उक्त प्रदेरा-
विमिच्छिअ अन्तरकात्त नहीं है वह स्पष्ट ही है । पञ्च त्रिय त्रियैज्जिकीं वह अन्तर्मुहूर्तका पठित
हो जाती है, इसलिय इनमें सामान्य त्रियैज्जिके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र इन
त्रियैज्जिकीं अथस्थिति पूर्वकोटिपूरकत्त अधिक तीन पत्तप्रमाण है, इसलिय इनमें सम्पत्त और
सम्पत्तिप्यात्तकी अनुत्त प्रदेराविमिच्छिअ उक्त अन्तर उक्त अज्ञप्रमाण प्राप्त होने यहाँ इनकी
अपेक्षा अन्तरकात्त अज्ञाते निर्देरा किया है । पञ्च त्रिय त्रियैज्ज अपवात्तकीं सब म्भितियोंकी
उक्त प्रदेराविमिच्छिअ अन्तर प्रथम समयमें प्राप्त होती है, इसलिय यहाँ उक्त और अनुत्त प्रदेरा-
विमिच्छिअ अन्तरकात्त सम्भव न होनेसे उक्त निषेध किया है ।

§ ४८ मणुप्पगतिं मणुप्पोमिं मिप्पात्तं आठ कयाय, जपुसक्खेव हात्त, रत्ति, अरत्ति,
शोक्क, मय और सुगुप्पाकी उक्त और अनुत्त प्रदेराविमिच्छिअ अन्तरकात्त नहीं है । सम्पत्त
सम्पत्तिप्यात्त और अन्तर्मुहूर्तकी-उक्त म्भ पञ्च त्रिय त्रियैज्जिके समान है । बार
संज्ञतन पुग्गेव और कीबेरकी उक्त प्रदेराविमिच्छिअ अन्तरकात्त नहीं है । अनुत्त प्रदेरा-
विमिच्छिअ जपम्भ और उक्त अन्तर एक समय है । इसी प्रकार मणुप्प पर्यात्त और मणुप्पितियों-

तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ४८. देवगदीए देवेसु मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० एकत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं साग० देसूणाणि । एवं भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा ति । णवरि सगट्ठिदीओ भाणिदव्वाओ । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्साणुकस्स० णत्थि अंतरं । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

में जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम

समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है । सम्यक्त्व आदि ब्रह्म प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एक तो इनकी भी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है । दूसरे इनमें अनन्तानुवन्धीचतुष्कका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य ही प्राप्त होता है, इसलिए पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी अन्तरकाल वन जाता है । चार संज्वलन आदिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नृपकश्रेणिमें एक समयके लिए और चूर्णिसूत्रके अनुसार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भोगभूमिमें पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल जाने पर प्राप्त होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है । इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर काल सम्भव नहीं है यह स्पष्ट ही है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें अन्तरकालपरुपणा सामान्य मनुष्योंके समान वन जाती है, इसलिए इनमें उनके समान जाननेकी सूचना की है । तथा स्वामित्व और कायस्थिति आदि की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंसे मनुष्य अपर्याप्तकोंमें कोई अन्तर नहीं है, इसलिए यहाँ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ४८ देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्कीस सागर है । अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्कीस सागर है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कुछ कम इक्कीस सागरके स्थानमें कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिए । अनुद्दिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है यह तो स्पष्ट ही है । अब रहा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका विचार सो देवोंमें मिथ्यात्व आदि वाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना

चक्र० नत्वि अंतरं । अणुचक्र० अहणुचक्र० एगस० । एवं परिधिद्वयविरिक्त्वविपस्त ।
 नवरि सम्म०-सम्पामि० चक्र० नत्वि अंतरं । अणुचक्र० नह० एगस०, चक्र०
 विणि पल्लिदोषमाणि पुष्पकोटिपुपत्तेजमरियाणि । परिधिद्वयविरिक्त्वविपस्त० मडा-
 बीसं पयडीपुष्पकस्याणुचक्र० नत्वि अंतरं ।

१४७ मणुसगद्दीप मणुस्सेसु मिच्छ०-मडकसाय जर्जस० इत्स रदि-भरदि
 साग-मय दुर्गाभायं सप्तसायुक्तस नत्वि अंतरं । सम्म०-सम्पामि०-मर्गतापु०
 चक्र० परिधिद्वयविरिक्त्वमंगो । चतुसंभक्त० पुरिस०-इत्थिबेद० चक्र० नत्वि अंतरं ।
 अणुचक्र० अहणुचक्र० एगस । एवं मणुसपञ्चस-मणुसिणीन । मणुसमपञ्च० परिधिद्वय

प्रदेशविमर्शित्य अथम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चक्र अन्तर चक्र कम तीन पत्त्य है । बीवेरकी
 चक्र प्रदेशविमर्शित्य अन्तरअन्त नहीं है । अणुचक्र प्रदेशविमर्शित्य अथम्य और चक्र अन्तर
 एक समय है । इसीप्रकार पञ्च मित्र तिर्यङ्गत्रिकर्मे जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें
 सम्पत्त्व और सम्पमिध्यात्वकी चक्र प्रदेशविमर्शित्य अन्तरअन्त नहीं है । अणुचक्र प्रदेश-
 विमर्शित्य अथम्य अन्तर एक समय है और चक्र अन्तर पूर्वकोटि पूरकत्व अधिक तीन पत्त्य
 है । पञ्च मित्र तिर्यङ्ग अपयार्त्तर्क्षमें आर्द्राईस प्रहृतिवोंकी चक्र और अणुचक्र प्रदेशविमर्शित्य
 अन्तरअन्त नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम चक्रकर्म नहीं गई प्रहृतिवोंकी चक्र प्रदेशविमर्शित्य अथम्य होनेके
 प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी चक्र और अणुचक्र प्रदेशविमर्शित्य अन्तरअन्त निषेध
 किया है । ओषमें सम्पत्त्व और सम्पमिध्यात्वके अन्तरअन्त जो मङ्ग कहा है वह यहाँ
 अधिकत बन जाता है, इसलिये उसे ओषके समान जाननेकी सूचना की है । अनन्त्यानुबन्धी-
 चतुष्पञ्ची चक्र प्रदेशविमर्शित्य अन्तरअन्त सम्पत्त्व नहीं है वह गुणितकर्माद्यधिके देखनेसे
 स्पष्ट हो जाता है । पर ये विस्मयजन्य प्रहृतिवें हैं, इसलिये यहाँ इनके अणुचक्र प्रदेशविमर्शित्य
 अथम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और चक्र अन्तर चक्र कम तीन पत्त्य कहा है । यहाँ स्त्रीवेदक चक्र
 प्रदेशविमर्शित्य योगभूमिमें पञ्चक अस्त्रप्रकारों आगप्रमाण अक्षयाने पर होता है, इसलिये इसकी
 अणुचक्र प्रदेशविमर्शित्य अथम्य और चक्र अन्तरअन्त एक समय कहा है । इसकी चक्र प्रदेश-
 विमर्शित्य अन्तरअन्त नहीं है यह स्पष्ट ही है । पञ्च मित्र तिर्यङ्गत्रिकर्मे यह अन्तरप्रत्यया बहिर
 हो जाती है, इसलिये इनमें सामान्य तिर्यङ्गके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र इन
 तिर्यङ्गोंकी अपरिचित पूर्वकोटिपूरकत्व अधिक तीन पत्त्यप्रमाण है इसलिये इनमें सम्पत्त्व और
 सम्पमिध्यात्वकी अणुचक्र प्रदेशविमर्शित्य चक्र अन्तर चक्र अक्षप्रमाण प्राप्त होने यहाँ इनकी
 अपेक्षा अन्तरअन्त अक्षप्रमाणे निर्देश किया है । पञ्च मित्र तिर्यङ्ग अपयार्त्तर्क्षमें सब प्रहृतिवोंकी
 चक्र प्रदेशविमर्शित्य मङ्गके प्रथम समयमें प्राप्त होती है, इसलिये यहाँ चक्र और अणुचक्र प्रदेश-
 विमर्शित्य अन्तरअन्त सम्पत्त्व व होनेसे उत्पन्न निषेध किया है ।

१४८ मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिध्यात्व, आठ कषाय, तपुसकषेह हास्य, रति, अरति,
 शोक, मग और मनुष्यकी चक्र और अणुचक्र प्रदेशविमर्शित्य अन्तरअन्त नहीं है । सम्पत्त्व,
 सम्पमिध्यात्व और अथम्यानुबन्धीचतुष्पञ्ची मङ्ग पञ्च मित्र तिर्यङ्गके समान है । बार
 संमलद, पुरास्त्र और बीवेरकी चक्र प्रदेशविमर्शित्य अन्तरअन्त नहीं है । अणुचक्र प्रदेश-
 विमर्शित्य अथम्य और चक्र अन्तर एक समय है । इसी प्रकार मनुष्य पञ्चास और मनुष्यविशेषों-

जहण० णत्थि अंतर । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०,
उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं । अज०
जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवं सत्तमाए पुढवीए ।

५५१. पहमाए जाव छट्ठि त्ति भिच्छ०-वारसक०-इत्थि-णवुंस०-भय-दुगुंछ०
जहण०|जहण० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि
अंतरं । अज० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० सग-सगट्ठिदीओ' देसूणाओ । पंच-
णोक० जह० णत्थि अंतर । अज० जहणुक्क० एगस० ।

अन्तरकाल एक समय है । वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेश-
विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर
कुछ कम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस
सागर है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—नरक आदि चारों गतियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपित
कर्मा शिक जीवके होनेके कारण प्रत्येकमें दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए सर्वत्र इसके अन्तर-
कालका निषेध किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तर कालका विचार करने पर नारकियोंमें
मिथ्यात्व आदि आठ प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति वहा उत्पन्न होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल
जाने पर सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक
समय कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व ये दो उद्बलना प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुबन्धीचतुष्क
विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल
वन जानेसे उसका अलगसे निर्देश किया है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके दोनों प्रकारके
अन्तरकालको आगे भी इसी आधारसे घटित कर लेना चाहिए । मात्र सर्वत्र जघन्य अन्तरकाल
तो एक समान है । उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है ।
केवल अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा तीर्थश्चों और मनुष्योंमें वह कुछ कम तीन पत्य ही
कहना चाहिए । यहाँ बारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें
होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है । सातवीं
पृथिवीमें यह प्ररूपणा अधिकल वन जाती है, इसलिए उनमें सामान्य नारकियोंके समान
जाननेकी सूचना की है ।

५५१ प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, स्त्रीवेद,
नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी नरकसे

§ ४४. जहण्य पयर्त्तं । इतिहो गिरसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मिष्य०-एकारसक०-जयनोक्त० जहण्यजहण्यपदं० नत्ति अंतरं । सम्म०-सम्पापि० नह० नत्ति अंतरं । अन्न० अह० एगस०, उक्त० उवहुपोमसपरियज्ञा । अन्नतापु० अन्न० अह० नत्ति अंतरं । अन्नह० अह० अन्नतापु०, उक्त० वेद्यावहिसागरो० देसनाणि । सोमसंज्ञ० अ० नत्ति अंतरं । अन्न० जहण्युक्त० एमसपयो ।

§ ४५. आदेसेण खेरपसु मिष्य०-तिग्निवेद० इदस-रदि-अरदि-सोगार्त्तं नह० नत्ति अंतरं । अन्न० जहण्युक्त० एगस० । नारसक०-मय-सुर्ग्या० जहण्य-प्रकृतिर्वा है । इनका कर्मसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक कुछ कम इष्टीस सागर एक सत्त्व नहीं पाया जाता । तथा अवन्तातुबन्धीचतुष्क विस्तृतोक्त्या प्रकृतिर्वा है, इसलिये इनका कर्मसे कम अवन्तातुर्त्त तक और अधिकसे अधिक कुछ कम इष्टीस सागर कम तक सत्त्व नहीं पाया जाता इसलिये इनकी अनुकूल प्रदेशविमर्शिका जगन्मय और उक्त अन्तर एक कालप्रमाण कहा है । अवन्तासिधो सेकर वी भवेयक उनके देशोंमें वह अन्तर प्रहमया बन जाती है, इसलिये इनमें स्याम्य देशोंके समाव आनमेकी सूचना की है । यात्र इनकी स्वस्तिवि अलग अलग है, इसलिये इनमें कुछ कम इष्टीस सागरके स्थानमें कुछ कम अपनी अपनी स्वस्तिवि प्रकृत करनेकी सूचना की है । अनुदिरासे सेकर आगेके सब देशोंमें उनके प्रथम समयमें सब प्रकृतियोंकी उक्त प्रदेशविमर्शिक होती है इसलिये इनमें उन प्रकृतियोंकी उक्त और अनुकूल प्रदेशविमर्शिके अन्तरकाल निवेद किया है । वह वी अन्तरप्रहमया की है इसे स्थानमें रखकर आगेकी मार्गधाओंमें वह बटित की जा सकती है, इसलिये इनमें इसी प्रकार से जानेकी सूचना की है ।

इस प्रकार उक्त अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४६. जयन्त्य प्रकृत्य है । निर्देश वा प्रकारक है—ओष और आदेरा । ओषसे मिष्यात्वा व्याख्या किया और वी भोक्त्याओंकी जगन्मय और अजगन्मय प्रदेशविमर्शिका अन्तरकाल गयी है । अन्यक्त और अन्यमिष्यात्वाकी जगन्मय प्रदेशविमर्शिका अन्तरकाल नहीं है । अजगन्मय प्रदेशविमर्शिका जगन्मय अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर क्वाचै पुरास परिवर्तनप्रमाण है । अवन्तातुबन्धीचतुष्ककी जगन्मय प्रदेशविमर्शिका अन्तरकाल नहीं है । अजगन्मय प्रदेशविमर्शिका जगन्मय अन्तर अवन्तातुर्त्त है और उक्त अन्तर कुछ कम वी अपासठ सागरप्रमाण है । सोमसंज्ञातकी जगन्मय प्रदेशविमर्शिका अन्तरकाल नहीं है । अजगन्मय प्रदेशविमर्शिका जगन्मय और उक्त अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—ओषसे मिष्यात्वा व्याधि अर्थात्स प्रकृतियोंकी जगन्मय प्रदेशविमर्शिक अपनी अपनी जगन्माके समाव योग्य स्थानमें होती है, इसलिये इनकी जगन्मय और अजगन्मय प्रदेशविमर्शिके अन्तरकाल निवेद किया है । यात्र समयकाल और सम्बन्धिमिष्यात्वा कालना प्रकृतिर्वा है और अवन्तातुबन्धीचतुष्क विस्तृतोक्त्या प्रकृतिर्वा है, इसलिये इनकी अजगन्मय प्रदेशविमर्शिका जगन्मय और उक्त अन्तरकाल बन जानेसे उक्त कालसे कालेय किया है । तथा सोमसंज्ञातकी जगन्मय प्रदेशविमर्शिक एक समाव तक होनेके बाद वी अजगन्मय प्रदेशविमर्शिक होती है, इसलिये इसकी अजगन्मय प्रदेशविमर्शिका जगन्मय और उक्त अन्तर एक समय कहा है ।

§ ४७. आदेरासे नारकियोंमें मिष्यात्वा तीन वेद काल्य रति अर्पित और शोककी जगन्मय प्रदेशविमर्शिका अन्तरकाल गयी है । अजगन्मय प्रदेशविमर्शिका जगन्मय और उक्त

जहण्ण० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०,
उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं । अज०
जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवं सत्तमाए पुढवीए ।

§ ५१. पढमाए जाव छट्ठि त्ति भिन्ध०-चारसक०-इत्थि-णयुंस०-भय-दुगुंछ०
जहण्णजहण्ण० णत्थि अंतरं । सम्पत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि
अंतरं । अज० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० सग-सगद्धिदीओ' देसूणाओ । पंच-
णोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० ।

अन्तरकाल एक समय है । वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेश-
विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर
कुछ कम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस
सागर है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—नरक आदि चारो गतियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपित
कर्मा शिक जीवके होनेके कारण प्रत्येकमे दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए सर्वत्र इसके अन्तर-
कालका निषेध किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तर कालका विचार करने पर नारकियोंमें
मिथ्यात्व आदि आठ प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति वहा उत्पन्न होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल
जाने पर सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक
समय कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व ये दो उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुबन्धीचतुष्क
विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल
वन जानेसे उसका अलगसे निर्देश किया है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके दोनों प्रकारके
अन्तरकालको आगे भी इसी आधारसे घटित कर लेना चाहिए । मात्र सर्वत्र जघन्य अन्तरकाल
तो एक समान है । उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है ।
केवल अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें वह कुछ कम तीन पत्य ही
कहना चाहिए । यहाँ वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें
होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है । सातवीं
पृथिवीमें यह परूपणा अधिकल वन जाती है, इसलिए उनमें सामान्य नारकियोंके समान
जाननेकी सूचना की है ।

§ ५१ प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, स्त्रीवेद,
नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी नरकसे

१५२ तिरिकलगात्रीए तिरियसेसु मि०-बारसक०-इत्यि-गुप्त०-भय
 दुर्गुधानं जहणामहण० गत्ति अंतरं । सम्म०-सम्मायि० आर्य । अणठाणु० पड०
 मह० गत्ति अंतरं । अज अ० अंतोमु०, उक्क तिणिण पसिदा० वसुणाभि ।
 पंपणोक्क० जह० गत्ति अंतरं । अम० जहणुक्क० एगस० । एर्य पंचिदियतिरिक्क
 तियस्स । पवरि सम्म०-सम्मायि० जह० गत्ति अंतरं । अम० जह० एगस०, उक्क०
 सगदिदी देसुवा । पंचिदियतिरिक्कअपत्त० मिप० सम्म०-सम्मायि० सोलसक०-
 मय-दुर्गुधा० जहणामहण० गत्ति अंतरं । सतणोक्क० जह० गत्ति अंतरं । अज०
 जहणुक्क० एगस० ।

तिरिक्कलेके अन्तिम समयमें और दोष की तरफमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशविमर्षिक
 होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविमर्षिकके अन्तरकात्त नहीं है । समयकत्त और सम्म-
 म्मिप्यात्तका मज्झ ओपके समान है । अनन्तागुप्त पाँचगुप्ताकी जघन्य प्रदेशविमर्षिकके अन्तरकात्त
 नहीं है । अजघन्य प्रदेशविमर्षिकके जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उक्क अन्तर उक्क कम तीन
 पत्त्य है । पाँच नाकपायोकी जघन्य प्रदेशविमर्षिकके अन्तरकात्त नहीं है । अजघन्य प्रदेशविमर्षि-
 का जघन्य और उक्क अन्तर एक समय है । इसी प्रकार पञ्च निर्य तिरिक्कत्रिकमें खानना
 बाहिर । इतनी विशेषता है कि इसमें समयकत्त और सम्मिप्यात्तकी जघन्य प्रदेशविमर्षिकके
 अन्तरकात्त नहीं है । अजघन्य प्रदेशविमर्षिकके जघन्य अन्तर एक समय है और उक्क अन्तर
 उक्क कम अपनी स्थितिप्रमाण है । पञ्च निर्य तिरिक्क अपरांतिकोंमें मिप्यात्त सन्दकत्त,
 सन्मिप्यात्त, सोलस कपाय, मय और कुगुप्ताकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविमर्षिकके
 अन्तरकात्त नहीं है । सात नाकपायोकी जघन्य प्रदेशविमर्षिकके अन्तरकात्त नहीं है । अजघन्य
 प्रदेशविमर्षिकके जघन्य और उक्क अन्तरकात्त एक समय है ।

विशेषार्थ तिरिक्कलेके मिप्यात्त कोले और नृपसम्बेदका जघन्य प्रदेशात्तमें तीन
 पत्त्यकी आयुके अन्तिम समयमें सम्भव है । बाह्य कपाय, मय और कुगुप्ताकी जघन्य प्रदेशात्तमें
 तिरिक्क पर्याय प्रकाश करनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविमर्षिकके
 अन्तरकात्त निषेय किया है । समयकत्त और सम्मिप्यात्तका मज्झ ओपके समान वहाँ भी
 प्रतिष्ठित है । इसलिए इनका मज्झ ओपके समान खाननेकी सूचना की है । अनन्तागुप्ताकी
 गुप्ता विसंकोचना प्रकृतियों हैं । इसका सत्त्व कमसे कम अन्तर्मुहूर्त अन्तरात्त और अधिकसे
 अधिक उक्क कम तीन पत्त्य कात्त एक न रहे यह सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेश-
 विमर्षिकके जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उक्क अन्तर उक्क कम तीन पत्त्य कहा है । पाँच
 नाकपायोकी जघन्य प्रदेशविमर्षिक तिरिक्कलेके उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाह्य प्रतिपत्त प्रकृतियोंके
 वन्धके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविमर्षिकके जघन्य और उक्क
 अन्तरकात्त एक समय कहा है । पञ्च निर्यतिरिक्कत्रिकों में यह अन्तरकात्त इसी प्रकार बन जाता

§ ५३. मणुस-मणुसपज्जत्तएसु^१ मिच्छ०-एकारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्ण०
णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क०
तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुण्वकोटिपुधत्तेण०भहियाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि
अंतरं । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देसूणाणि । लोभसंज० जह०
णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० । एवं मणुस्सिणीणं । णवरि पुरिसवेद०
लोभसंजलणभगो । मणुसअपज्जत्ताणं पच्चिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

है, उसे सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है, इसलिए इनके अन्तरकालका निर्देश अलगसे किया है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके बाद यहाँ पुनः इनका सत्त्व सम्भव नहीं है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष सात नोकपायोकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्रतिपत्त प्रकृतियोंका बन्ध होनेके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है।

§ ५३ मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। लोभ संज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदका भङ्ग लोभ-संज्वलनके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य आदि तीनों प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणोंके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य उद्वेलनाकी अपेक्षा वन जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य विसंयोजनाकी अपेक्षा वन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा संज्वलन लोभकी जघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ क्षणोंके अन्तर्मुहूर्त पूर्व होती है, इसलिए इसकी अजघन्य

१५२ तिरिक्त्वादीए तिरिक्त्सेसु मिच्छ०-बारसक०-इति-गाइस०-अय-
 दुगुंआनं अइण्णाअइण्ण० जत्ति अंतरं । सम्म०-सम्मायि० आरं । अनंताणु० पवक०
 चार० जत्ति अंतरं । अम० न अतोणु , उक्क तिण्णि पसिहो० वेसूजानि ।
 पंपथोक्क० अह० जत्ति अंतरं । अक्क० अहणुक्क० एमस० । एवं पंपिदियतिरिक्त्त
 तियस्स । अवरि सम्म०-सम्मायि० जह० जत्ति अंतरं । जम० अह० एगस०, उक्क०
 समहिदी वेसूणा । पंपिदियतिरिक्त्तमपण्ण० मिच्छ० सम्म०-सम्मायि० सोकसक०
 मय-दुगुंआ० जहण्णाअइण्ण० जत्ति अंतरं । सत्तथोक्क० अह० जत्ति अंतरं । जम०
 जहणुक्क० एतस० ।

विकल्पनेके अन्तिम समयमें और शेष की जरूरतें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अत्राप्य प्रवेशविमर्श
 होती है, इसलिये इनकी अत्राप्य प्रवेशविमर्शके अन्तरका काल निश्चय किया है। तथा शेष
 पाँच लोकपायोंकी अपन्य प्रवेशविमर्श स्वामी सामान्य मायिक्यों के समान है, इसलिये
 यहाँ इनकी अत्राप्य प्रवेशविमर्श अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव इन्से यह
 काल अन्तप्रमाण कहा है।

१५२ तिर्यक्छप्रतिमें तिर्यक्छमें मिथ्यात्व, बाह्य कथाय स्वीकृत नपु सक्त्वं मय और
 सुगुप्ताकी अपन्य और अत्राप्य प्रवेशविमर्शके अन्तरका काल नहीं है। सम्बन्ध और सम्म-
 मिथ्यात्वका मत्र ओपके समान है। अतस्त्यनुबन्धीकमुपकी अपन्य प्रवेशविमर्शके अन्तरका काल
 नहीं है। अत्राप्य प्रवेशविमर्श अपन्य अन्तर अन्तर्गुह्य और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन
 पत्य है। पाँच लोकपायोंकी अपन्य प्रवेशविमर्शके अन्तरका काल नहीं है। अत्राप्य प्रवेशविमर्श-
 का अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार पञ्च त्रिय तिर्यक्छप्रतिमें जानना
 चाहिए। "तनी विस्तृत है कि इनमें सम्बन्ध और सम्मिमिथ्यात्वकी अपन्य प्रवेशविमर्शके
 अन्तरका काल नहीं है। अत्राप्य प्रवेशविमर्शके अपन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर
 कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। पञ्च त्रिय तिर्यक्छ अपर्वातमें मिथ्यात्व सम्बन्ध,
 सम्मिमिथ्यात्व, सत्तह कथाय मय और सुगुप्ताकी अपन्य और अत्राप्य प्रवेशविमर्शके
 अन्तरका काल नहीं है। सात लोकपायोंकी अपन्य प्रवेशविमर्शके अन्तरका काल नहीं है। अत्राप्य
 प्रवेशविमर्शके अपन्य और उत्कृष्ट अन्तरका काल एक समय है।

विशेषाद्य तिर्यक्छमें मिथ्यात्व, स्वीकृत और नपुसकदेवका अपन्य प्रवेशासक्तने तीन
 पत्यकी आयुके अन्तिम समयमें सम्भव है। बाह्य कथाय मय और सुगुप्ताकी अपन्य प्रवेशासक्तने
 तिर्यक्छ पर्याप्त प्रमाण करनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिये इनकी अत्राप्य प्रवेशविमर्शके
 अन्तरका काल निश्चय किया है। सम्बन्ध और सम्मिमिथ्यात्वका मत्र ओपके समान यहाँ भी
 पठित है जाना है, इसलिये इनका मत्र ओपके समान जाननेकी सूचना की है। अतस्त्यनुबन्धी-
 कमुप विस्तृतोचना प्रवृत्ति हैं। इनका सत्तह कमसे कम अन्तर्गुह्य अस्तक और अधिकसे
 अधिक कुछ कम तीन पत्य का काल तक न रहे यह सम्भव है, इसलिये इनकी अत्राप्य प्रवेश-
 विमर्शके अपन्य अन्तर अन्तर्गुह्य और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य कहा है। पाँच
 लोकपायोंकी अपन्य प्रवेशविमर्श तिर्यक्छमें उत्पन्न होनेके अन्तर्गुह्य बाह्य प्रतिपक्ष प्रवृत्तियोंके
 पन्धके अन्तिम समयमें होती है, इसलिये इनकी अत्राप्य प्रवेशविमर्शके अपन्य और उत्कृष्ट
 अन्तरका काल एक समय कहा है। पञ्च त्रियतिर्यक्छप्रतिमें यह अन्तरका काल इसी प्रकार बन जाता

§ ५३. मणुस-मणुसपज्जत्तएसु^१ मिच्छ०-एकारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्ण०
 णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क०
 तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुण्वकोटिपुत्तेणवभहियाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि
 अंतरं । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देसूणाणि । लोभसंज० जह०
 णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० । एवं मणुस्सिणीणं । णवरि पुरिसवेद०
 लोभसंजलणभगो । मणुसअपज्जत्ताणं पचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

है, उसे सामान्य तिर्यञ्चोके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है, इसलिए इनके अन्तरकालका निर्देश अलगसे किया है। पञ्चेंद्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना होनेके बाद यहाँ पुनः इनका सत्त्व सम्भव नहीं है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष सात नोकपायोकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्रतिपत्त प्रवृत्तियोंका वन्ध होनेके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है।

§ ५३ मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। लोभ सज्जलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदका भङ्ग लोभ-सज्जलनके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेंद्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य आदि तीनों प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणोंके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य उद्देलनाकी अपेक्षा वन जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य विसंयोजनाकी अपेक्षा वन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा सज्जलन लोभकी जघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ क्षणोंके अन्तर्मुहूर्त पूर्व होती है, इसलिए इसकी अजघन्य

॥ १४ ॥ देवगदीय देवसु मिच्छ०-बारसक०-इति०-गुप्त० मय-दुर्गुभा० महणा-
महण्य पत्ति अंतरं । सम्म०-सम्पामि० मह० पत्ति अंतरं । मज० मह०
एगस०, उक्क एकतीसं सागरो० दसूणाणि । अर्गताणु० चरुह० मह० पत्ति
अंतरं । मज० मह० अर्गताणु०, उक्क० एकतीसं सागरो देसूणाणि । पुरिसवद
हस्त-रदि-भरदि-सोग० मह० पत्ति अंतरं । मज० महण्णुद्ध० एगस० ।

॥ १५ ॥ भवणादि भाव उपरिगोबस्ता पि मिच्छ०-बारसक०-इति०-गुप्त०-
मय-दुर्गुभा० महणा-महण्य पत्ति अंतरं । सम्म०-सम्पामि०-अर्गताणु चरुह० मह०
पत्ति अंतरं । मज० मह० एगस० अर्गताणु०, उक्क० सग-सगद्धिदीमो देसूणामो ।

प्रदेशविमर्शित्य जपन्व और उत्तुष्ट अन्तर एक समय कहा है । मनुष्य अपर्याप्तकोष मज
पञ्च म्पिय विवेक अपर्याप्तकोषे समाप्त है यह स्पष्ट ही है ।

॥ ५४ ॥ देवगदीय देवसु मिच्छात्वा, श्रीवेद और मनुसंस्कृतकी जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसक्त नहीं है । सम्पत्त्व और
सम्पत्तिमिच्छात्वाकी जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसक्त नहीं है । अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य जपन्व
अन्तर एक समय है और उत्तुष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । अनन्तानुबन्धीपुण्यकी
जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसक्त नहीं है । अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य जपन्व अन्तर अन्तर्गुप्त है
ह और उत्तुष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । पुरस्केह हास्य, एति अरति और शोककी
जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तर नहीं है । अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य जपन्व और उत्तुष्ट अन्तर
आप्त एक समय है ।

विशेषार्थ—देवसु मिच्छात्वा, श्रीवेद और मनुसंस्कृतकी जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तर
प्रसक्त समयमर्मे तथा बाह्य कपाय मय और अनुप्राप्ती जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसक्त प्रसक्त
समयमर्मे होती है, इत्यतिष्ठान् नकी अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसक्त विशेष किया है ।
सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिच्छात्वाकी प्रसक्तना होकर पुनः पुनः तथा अनन्तानुबन्धीपुण्यकी
विशेषार्थना बाह्य पुनः पुनः अन्तिम प्रसक्त तक ही सम्पत्त्व है । आगे सम्पत्त्व और
सम्पत्तिमिच्छात्वाकी प्रसक्तना नहीं होती और अनन्तानुबन्धीपुण्यकी विशेषार्थना तो होती है
पर इन जीवोंकी मीय गिरमा सम्पत्त्व नहीं जानसे पुनः सत्य नहीं होता इत्यतिष्ठान् इन द्वय
प्रसक्तिकोषे । अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर कहा है । इनमें
सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिच्छात्वा अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य जपन्व अन्तर एक समय और
अनन्तानुबन्धीपुण्यकी अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य जपन्व अन्तर अन्तर्गुप्त है यह स्पष्ट ही है ।
यों पुनः पुनः आदिकी जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तर आरम्भमें अन्तर्गुप्त काम जाने पर प्रतिपक्ष
प्रतिपक्ष दन्धक प्रसक्त समयमर्मे होती है, इत्यतिष्ठान् नकी अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य जपन्व
और उत्तुष्ट अन्तर एक समय सम्पत्त्व जानसे बाह्य तक काम प्रमाण कहा है ।

॥ ५५ ॥ अनन्तानुबन्धीपुण्य सत्त्व अन्तिम प्रसक्त तकके देवसु मिच्छात्वा बाह्य कपाय,
मय मनुसंस्कृत और अनुप्राप्ती जपन्व और अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसक्त नहीं
है । सम्पत्त्व सम्पत्तिमिच्छात्वा और अनन्तानुबन्धीपुण्यकी जपन्व प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसक्त
नहीं है । अत्रपन्व प्रदेशविमर्शित्य जपन्व अन्तर कमस एक समय और अन्तर्गुप्त है तथा

पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० णत्थि अंतर । अज० जहणुक्क० एगस० ।

६ ५६. अणुहिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति अट्ठावीस पयडीणं जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतर । जत्थि हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमाणदभगो । एव जाव अणाहारए त्ति णीदे अंतर समत्तं होदि ।

❀ णाणाजीवेहि भगविचओ दुविहो—जहणुक्कस्सभेदेहि । अट्ठपद कादूण सव्वक्कस्माणं णेदव्वो ।

६ ५७. एदस्स सुत्तस्स देसापासियस्स उच्चारणाइरियवक्खाण परुव्वेपो । णाणाजीवेहि भगविचओ दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । तत्थ अट्ठपद—अट्ठावीसं पयडीणं जे उक्कस्सपदेसरस्स विहत्तिया ते अणुक्कस्सपदेसस्स अविहत्तिया । जे अणुक्कस्सपदेसस्स विहत्तिया ते उक्कस्सपदेसस्स अविहत्तिया । विहत्तिएहि पयदं, अविहत्तिएहि अव्ववहारो । एदेण

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ— सामान्य देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालको जिसप्रकार घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहा पर भी घटित कर लेना चाहिए ।

६ ५६ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इतनी विशेषता है कि हास्य, रति, अरति और शोक प्रकृतिका भङ्ग आनत कल्पके समान है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जानेपर अन्तरकाल समाप्त होता है ।

विशेषार्थ— मिथ्यात्व आदि कुछ प्रकृतियोंकी भवके अन्तिम समयमे और कुछकी भवके प्रथम समयमे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव नहीं होनेसे उसका निषेध किया है । मात्र हास्य आदि चार प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति पर्यायग्रहणके अन्तर्मुहूर्त वाद होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

❀ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे भङ्गविचय दो प्रकारका है । सो इस विषयमें अर्थपद करके सब कर्मोंका ले जाना चाहिए ।

६ ५७. यह सूत्र देशामर्पक है । इसके उच्चारणाचार्य कृत व्याख्यानका कथन करते हैं— नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसमें यह अर्थपद है—जो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तियाले जीव हैं वे उनकी अनुत्कृष्ट प्रदेश विभक्तियाले हैं । तथा जो अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तियाले जीव हैं वे उत्कृष्ट प्रदेश विभक्तियाले हैं । यहा विभक्तियाले जीवोंका प्रकरण है, क्योंकि अविभक्तियालोंका व्यवहार नहीं

मद्वपदण बुविहो विहोसो—ओषण आहोसेण । तस्य ओषेण मद्वासीसं पयहीनं
 चकस्सपदसस्त सिया सन्ने जीवा मविहसिया १, सिया मविहसिया च विहसिया च २,
 सिया मविहसिया विहसिया च ३ । अणुचकस्सपदेसस्त सिया सन्ने जीवा विहसिया १,
 सिया विहसिया च मविहसियो च २, सिया विहसिया च मविहसिया च ३ । एवं
 सन्नेणरइय-सन्नेतिरिचल-मणुसतिय-सम्भद्वं ति । मणुसमपञ्ज० मद्वासीसं पयहीनं
 चकस्सपदसविहसियाणं मविहसिएहि सह मद्द भंग्य । अणुचकस्सपदेसविहसियाणं पि
 मविहसिएहि सह मद्द भंग्य पसव्वा । एवं णेद्वं भाव मणाहारि ति ।

ह । इस अर्थपरक अनुसार निर्देश हा प्रकरका है—ओष और आहोरा । ओषसे कराचिन् सब
 जीव अन्तर्गम्य मृत्तियोकी उत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छालास हैं १ । कराचिन् अविम्विच्छाले बहुत जीव
 हैं और विम्विच्छाला एक जीव ह २ । कराचिन् अविम्विच्छाले बहुत जीव हैं और विम्विच्छाले
 बहुत जीव हैं । अनुत्पत्ति प्रदेशोकी अपवा कराचिन् सब जीव विम्विच्छालास हैं १ । कराचिन् बहुत
 जीव विम्विच्छालास हैं और एक जीव अविम्विच्छाला है २ । कराचिन् बहुत जीव विम्विच्छाले
 हैं और बहुत जीव अविम्विच्छाला हैं ३ । इसी प्रकार सब नारकी सब तिमैल, मनुष्यात्रिक और
 सब इषोने जानना चाहिए । मनुष्य अपवात्रिक जीवोंमें अद्वासीस मृत्तियोकी उत्पत्ति प्रदेश-
 विम्विच्छाला जीवोंके अविम्विच्छाले जीवोंके साथ आठ मद्द होते हैं । तथा अनुत्पत्ति प्रदेश-
 विम्विच्छाला जीवोंके भी अविम्विच्छाला जीवोंके साथ आठ मद्द करने चाहिए । इस प्रकार
 अन्तर्गम्य मात्मा एक ही जाना चाहिए ।

विद्यापार्य—यहां अद्वासीस मृत्तियोके उत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाले और अविम्विच्छाले
 तथा अनुत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाले और अविम्विच्छाला जीवोंके मद्द करके फिर बार गतिधर्मों से
 बतनाय गय है । उत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाले उत्पत्ति मात्मासे होनी ह । वह सत्ता सम्यक् सही ह, इसलिये
 कराचिन् एक ही जीव उत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाला सही होता कराचिन् एक जीव उत्पत्ति प्रदेश-
 विम्विच्छाला हाता है और कराचिन् नाना जीव उत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाला होते हैं, इसलिये उत्पत्ति
 प्रदेश-विम्विच्छाला अपवा तीन मद्द हात है । मद्द मूलमें ही यह है । अनुत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाला
 अपवा विचार करने पर भी तीन मद्द ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि कराचिन् सब जीव अनुत्पत्ति
 प्रदेश-विम्विच्छाला धारक हात हैं कराचिन् सब सब जीव अनुत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाला धारक होत हैं और
 एक जीव अनुत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाला धारक नहीं हाता और कराचिन् नाना जीव अनुत्पत्ति प्रदेश-
 विम्विच्छाला धारक हात हैं और नाना जीव अनुत्पत्ति प्रदेश-विम्विच्छाला धारक नहीं हात, इसलिये इस
 अपवात भी तीन मद्द बन जात हैं । लक्ष्यपयान मनुष्योंका हाइकर गति मार्गोत्पत्ति अन्त्य सब
 मर्गोंमें यह अपवा प्रकृत्या अधिकृत पठित हा जाती है, इसलिये हममें आपक समान जाननकी
 मूल्यता की ह । मात्र मनुष्य अपवातक यह अन्तर मात्मा है । इसलिये हममें उत्पत्ति और अनु-
 त्पत्ति दोनों प्रदेश-विम्विच्छालोंके अपवातपयान अविम्विच्छालाओंके साथ एक और नाना जीवोंकी
 अपवा आठ-आठ मद्द बन जानम करवा मर्त्य धारणस किया ह । मर्त्य यह पदति अन्तर्गम्य
 मात्मात्रिक अपवात-अपवाती विद्यानाके अर्थ पठित हा जाती ह, इसलिये अन्तर्गम्य मात्मात्रिक
 एक प्रकृत्याक समान जाननका मूल्यता की ह ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपवा उत्पत्ति मद्दविषय समान हुआ ।

§ ५८, जहण्णए पयदं । तं चेव अट्ठपदं । णवरि जहण्णमजहण्णं ति भाणिदव्वं । अट्ठावीसं पयडीणं जहण्णपदेसविहत्तियाणं तिण्णि भंगा । अजहण्णपदेसविहत्तियाणं पि तिण्णि चेव भंगा । एवं सव्वणोरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसतिय-सव्वदेवा ति । मणुसअपज्ज० जहण्णाजहण्ण० अट्ठ भंगा । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

§ ५९, संपहि एदेण अहियारेण सूचिदसेसाहियाराणमुच्चारणं भणिस्सामो । भागाभागो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिदेसो-ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणमुक्क० पदेसविहत्तिया जीवा सव्व-जीवाणं केव० ? अणंतभागो । अणुक्क० सव्वजीवाणं केव० ? अणंतं भागा । सम्म०-सम्मामि० उक्क० पदेसविहत्ति० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदिभागो । अणुक्क० सव्वजी० के० ? असंखे० भागा । एवं तिरिक्खोघं ।

§ ५८ जघन्यका प्रकरण है वही अर्थपद है । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए । अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके तीन भङ्ग होते हैं । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके भी तीन भङ्ग होते हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्यत्रिक और सब देवोंमें जानना चाहिए मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा आठ आठ भङ्ग होते हैं । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पहले उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंकी अपेक्षा ओघसे और चारों गतियोंमें जहाँ जितने भङ्ग सम्भव हैं वे घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेने चाहिए । मात्र यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ ।

§ ५९. अब इस अधिकारसे सूचित हुए शेष अधिकारोंकी उच्चारणाका कथन करते हैं । भागाभाग दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्निध्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं । असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी सत्तासे युक्त कुल जीव राशि अनन्तानन्त है । उसमेंसे ओघसे इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक असंख्यात हो सकते हैं । चार सज्जलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक संख्यात हो सकते हैं । शेष सब जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले होते हैं, इसलिए यहाँ छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

॥ ६० ॥ आदेशेण णरहणसु अद्वाधीतं पयवीणं उक्तं० सम्बन्धी० केव० ? असंस्व० भागा । मणुक्क० असंस्वेज्जा भागा । एवं सम्बन्धिरय-सम्बन्धविधिपतिरिक्त-मणुस०-मणुममपञ्च०-वेव ययणादि भाव अवराइदा धि वसव्यं । मणुसपञ्च मणुस्तिणि-सम्बन्धसिद्धेसु अद्वाधीतं पयवीणमुक्तं पदे० सम्बन्धी० केव० ? संस्वे भागो । मणुक्क संस्वेज्जा भागा । एवं जेद्व्यं भाव अणाहारि ति ।

॥ ६१ ॥ जहणणप पयव् । जहणणप उक्तस्सर्मगा । जवरि जहण्णामहण्णं धि भाविद्व्यं । एवं जेद्व्यं भाव अणाहारि ति ।

एवं भागामागो सप्तो ।

॥ ६२ ॥ परिमाणं दुविहं—जहणणमुक्तस्सं व । उक्तस्से पयव् । दुविहो विह सो-ओपग आदेशेण व । ओपेण मिच्छ०-वारसक०-महणोक्क उक्तस्सपदेसविद्धिपया

प्रदेशविमर्शिताले जीव अनन्तत्वे मगप्रमास और अनुक्तस प्रदेशविमर्शिताले जीव अनन्त बहुभागप्रमास पदे हैं । सम्बन्ध और सम्बन्धिमर्शिताली सत्तावाले ही उक्त जीव असंख्यात होते हैं । उनमें भी उक्त प्रदेशविमर्शिताले असंख्यातत्वे मगप्रमास हो सकते हैं । होप अनुक्तस प्रदेशविमर्शिताले होते हैं । इसलिये इन दोनों प्रकृतियोंकी अपेक्षा उक्त प्रदेशविमर्शिताले असंख्यातत्वे मगप्रमास और अनुक्तस प्रदेशविमर्शिताले असंख्यात बहुभागप्रमास पदे हैं । सामान्य विवेक अनन्तप्रमास है, इसलिये इस मार्गस्थाने ओप प्रकृत्या वन जानेसे जयें ओपके समान जाननकी सुखा की है ।

॥ ६३ ॥ आदेशाने नापिकियोमें अद्वाइस प्रकृतियोंकी उक्त प्रदेशविमर्शिताले जीव सब जीवोंके किन्तु मगप्रमास हैं । असंख्यातत्वे मगप्रमास है । अनुक्तस प्रदेशविमर्शिताले जीव असंख्यात बहुभागप्रमास हैं । इसी प्रकार सब वारकी सब पञ्च त्रिय विवेक, मनुष्य, मनुष्य अपयान, वृष और मकनवासियोंसे केचर अपयानित विभाव तकके देवोंमें कथन करना चाहिए । मनुष्य पमास, मनुष्यिनी और सर्वाभौतिकिक देवोंमें अद्वाइस प्रकृतियोंकी उक्त प्रदेशविमर्शिताले जीव सब जीवोंके किन्तु मगप्रमास हैं । संख्यातत्वे मगप्रमास हैं । अनुक्तस प्रदेशविमर्शिताले जीव बहुभागप्रमास हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गस्थ तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—वदा त्रिन मार्गस्थोंकी संपत्ता असंख्यात है उनमें सब प्रकृतियोंके उक्त प्रदेशविमर्शिताले जीव असंख्यातत्वे मगप्रमास और अनुक्तस प्रदेशविमर्शिताले जीव असंख्यात बहुभागप्रमास पमास हैं । तथा त्रिय मार्गस्थोंका परिमाण संख्यात है उनमें उक्त प्रदेशविमर्शिताले ज व संख्यातत्वे मगप्रमास और अनुक्तस प्रदेशविमर्शिताले जीव संख्यात बहुभागप्रमास बतलाये हैं । होप कथन स्पष्ट ही है ।

॥ ६४ ॥ जपय्यम प्रकरण है । जपय्यम मत्र उक्तके समान है । इसी विशेषता है कि उक्त और अनुक्तके स्थानमें जपय्य और अजपय्य ऐसा कहा चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गस्थ तक ले जाना चाहिए ।

इस प्रकार मगामाग समान हुआ ।

॥ ६५ ॥ परिमाण हो प्रकरण है—जपय्य और उक्त । उक्तप्रम प्रकरण है । निवेदा हो प्रकरण है—ओप और आदेश । ओपसे मिच्छात्वा वाद कयाय और भाठ नोकपायोकी

केतिया ? असंखेज्जा । अणुक० पदे० केत्ति० ? अणंता । सम्मत०-सम्मापि० उक्क० पदेसवि० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक० केत्ति० ? असंखेज्जा । चदुसंज०-पुरिस० उक्क० पदे० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक० पदे० केत्ति० ? अणंता ।

§ ६३. आदेसेण णिरय० सत्तावीसं पयडीणमुक्क०-अणुक० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत० उक्क० पदे० के० ? संखेज्जा । अणुक० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं पढमाए । विदियादि जाव सत्तमि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्स०-अणुकस्स० केत्ति० ? असंखेज्जा ।

§ ६४. तिरिक्खवगईए तिरिक्खेसु छव्वीसं पयडीणं उक्क० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । अणुक० केत्ति० ? अणता । सम्मत० उक्क० पदे० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मापि० उक्कस्साणुक० केत्ति० ? असंखेज्जा ।

उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।

विशेषार्थ — ओघसे चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षपकश्रेणिमे होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति त्रायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है । शेष कथना सुगम है ।

§ ६३. आदेशसे नारकियोमे सत्ताईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—यहां सामान्यसे नारकियोंमें और पहली पृथिवीके नारकियोंमें कृतकृत्य-वेदकसम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते हैं और इनका अधिकसे अधिक परिमाण संख्यात होता है, इसलिए इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार आगे भी अपने अपने परिमाण और दूसरी विशेषताओंको जान कर सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिणाम ले आना चाहिए । उल्लेखनीय विशेषता न होनेसे हम अलग अलग स्पष्टीकरण नहीं कर रहे हैं ।

§ ६४. तिर्यञ्चगातिमें तिर्यञ्चोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ? अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

पंचिदियतिरिक्त्वा—पंचि० तिरिक्त्वापञ्चाशत् पञ्चमपुहभिर्मगो । पंचिदियतिरिक्त्वा-
भोभिर्भीणं विद्विषपुहभिर्मगो । पंचिदियतिरिक्त्वापञ्च० अट्टावीसं पयडीणमुहस्ता
पुह० पदे० केति० । असंसेज्जा । एवं मणुसमपञ्च० यवम०-बाण०-मोदिसि ए ति ।

१३२ मणुसमदि० मिच्छ०-बारसक०-अण्णोक्क० उहस्तापुह० पदे०
असंसेज्जा । सम्प०-सम्मायि०-अदुसंण०-तिणिग्गदाणापुह० केति० । संसेज्जा ।
अपुह० पदे० वि० केति० । असंसेज्जा । मणुसपञ्चत्त०-मणुसिणीसु सम्महसिदि०
अट्टावीसं पयडीणमुह०-अपुह० पदेस० केति० । संसेज्जा ।

१३३ देवमसीए देवसु सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति पञ्चमपुहभिर्मगो ।
आणदादि जाव भवराहो ति अट्टावीसं पयडीणं पुह० पदे० वि० केति० । संसेज्जा ।
अपुह० केति० । असंसेज्जा । एवं जेद्वं जाव अणाहारि ति ।

असंख्यात हैं । पञ्च मित्र तिर्यञ्च और पञ्च मित्र तिर्यञ्च पर्याप्तमें पड़ती प्रविष्टीके समान
मज्ञ है । पञ्च मित्र तिर्यञ्च योचिभियेमें वृक्षी प्रविष्टीके समान मज्ञ है । पञ्च मित्र तिर्यञ्च
अपर्याप्तमें अद्वयैस मष्टियोंकी कष्ट और अनुकष्ट प्रवेराविमिच्छासे जीव कितने हैं ?
असंख्यात हैं । इस प्रकार मनुष्य अपर्णास, अननवासी व्यम्हर और ज्योतिषी देवोंमें आनन्द
चाहिए ।

विशेषार्थ—पञ्च मित्र तिर्यञ्च और पञ्च मित्र तिर्यञ्च पर्याप्तमें कृत्तकप्रवेराविमिच्छा
जीव कल्पन होते हैं, इसलिये इनमें पड़ती प्रविष्टीके समान मज्ञ बन जानेसे इनके समान
आनन्दकी सूचना की है । परन्तु पञ्च मित्र तिर्यञ्च बाबिनी वीथीमें कृत्तकप्रवेराविमिच्छासे जीव
नहीं कल्पन होते, इसलिये इनमें वृक्षी प्रविष्टीके समान मज्ञ बन जानेसे इनके समान आनन्दकी
सूचना की है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१३४ मनुष्यगतिं मनुष्योमि मिच्छात्वा, वायु कषाय और अरु भोजनार्थकी कष्ट
और अनुकष्ट प्रवेराविमिच्छासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्पत्त्व सम्पत्तिमिच्छात्वा,
वार संख्यात और तीन क्षेत्रोंकी कष्ट प्रवेराविमिच्छासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनु-
कष्ट प्रवेरा विमिच्छासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और
सर्वावस्थितिके देवोंमें अद्वयैस मष्टियोंकी कष्ट और अनुकष्ट प्रवेराविमिच्छासे जीव कितने
हैं ? संख्यात हैं ।

१३५ देवगतिं देवोमि तथा सौवमी कथसे लेकर सहस्रार कथ तकके देवोंमें पड़ती
प्रविष्टीके समान मज्ञ है । आनन्द कथसे लेकर अपपञ्चित विभाव तकके देवोंमें अद्वयैस
मष्टियोंकी कष्ट प्रवेराविमिच्छासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुकष्ट प्रवेराविमिच्छा-
से जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इस प्रकार अवाहारक मार्गका एक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—वायुमें कथ तक तिर्यञ्च भी मरकर कल्पन होते हैं । इसलिये यहाँ तकके
देवोंमें पड़ती प्रविष्टीके समान मज्ञ बन जानेसे इनके समान आनन्द की सूचना की है । तथा
आनन्दके देवोंमें मनुष्य ही मर कर कल्पन होते हैं । इसलिये अद्वयैस मष्टियोंकी कष्ट प्रवेरा-
विमिच्छासे जीवोंका परिमाण संख्यात प्राप्त होनेसे यहाँ यह कथनमात्र कहा है । शेष कथन
सुम्भ है ।

§ ६७. जहणए पयदं । दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? अणंता । सम्म०-सम्मामि० जह० पदे०वि० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । एवं तिरिक्खाणं ।

§ ६८. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं जह० के० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइदो त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी-सव्वट्ठसिद्धि० सव्वपदा० के० ? संखेज्जा । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ६७. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश—ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है । अजघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोमे जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षणके समय यथायोग्य स्थानमें होती है । यतः इनकी क्षण करणवाले जीव संख्यात होते हैं, अतः इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्त होते हैं यह स्पष्ट ही है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अन्य विशेषताओंके रहते हुए अपनी अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें होती है । यतः ये जीव भी संख्यात ही होते हैं, अतः इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव असंख्यात होते हैं यह स्पष्ट ही है । सामान्यसे तिर्यञ्च अनन्त होते हैं, इसलिए उनमें यह ओघप्ररूपणा वन जाती है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र उनमें स्वामित्वका विचार कर परिमाण घटित करना चाहिए ।

§ ६८ आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर अपराजित विमान तकके देवो जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंसे लेकर पूर्वोक्त सब मार्गणाओंमें संख्यात जीव ही सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करते हैं, इसलिए सर्वत्र अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । तथा मनुष्य पर्याप्त आदि तीन मार्गणाओंका परिमाण संख्यात है और शेषका असंख्यात है, इसलिए इनमें अपने अपने परिमाणके अनुसार अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवों का परिमाण कहा है ।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ ।

॥ ६६. स्वप्नानुगमा दुरिहा—अहण्यो उक्तस्तथा च । उक्तस्ते पयः ।
दुरिहा निरसो—आपण आदसेण य । आपण दृष्टीसं पयडीणमुक्तं पदे-
विहितया केवढि स्वप्ने । सोगं असंख्यं भाग । अनुक्तं कथं ? सम्बन्धो । सम्म-
सम्मापि । उक्तं—अनुक्तं पदे कथं ? सागं असंख्यं भाग । एवं विरिक्त्वाणं ।

॥ ७०. आदसेण गेरहयसु अहायीसं पयडीणमुक्तं—अनुक्तं सागं असंख्यं-
भाग । एवं सम्बन्धेण—सम्बन्धेण विरिक्त्वाणं सम्बन्धेण—सम्बन्धेण—
नाम अनाहारिणि ।

॥ ७१. अहण्यो पयः । दुरिहा निरसा—आपण आदसेण य । आपण
सम्बन्धेण—अहण्यो पयः । उक्तस्तथा उक्तस्तथा—अहण्यो पयः ।

॥ ६६. स्वप्नानुगमा दुरिहा—अपण्य और उक्तस्तथा । उक्तस्तथा मन्त्रण है । निरसा तो
मन्त्रण है—आप और आदेश । आपसे दृष्टीसं प्रकृतियोंकी उक्त प्रदेराविष्मन्त्रण
जीवोंका ज्ञाना कर है । साके असंख्यातमें भागप्रमाण के है । अनुक्त प्रदेराविष्मन्त्रण
जीवोंका सब साक्ष्यमात्र के है । सम्बन्ध और सम्बन्धित्वकी उक्त और अनुक्त
प्रदेराविष्मन्त्रण जीवोंका ज्ञाना कर है । साके असंख्यातमें भागप्रमाण के है ।
इसी प्रकार निरसमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—दृष्टीसं प्रकृतियोंकी उक्त प्रदेराविष्मन्त्रण उक्त पञ्च ग्रन्थ जीव करते हैं
आर उनका सब साके असंख्यातमें भागप्रमाण है, इत्यति यहाँ आपसे उक्त प्रकृतियोंकी
उक्त प्रदेराविष्मन्त्रण जीवोंका सब साके असंख्यातमें भागप्रमाण के है । इनकी अनुक्त
प्रदेराविष्मन्त्रण उक्त प्रकृतियोंकी सगुणानुगत सब जीवोंकी सम्बन्ध और उनका सब साके है,
इत्यति यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी अनुक्त प्रदेराविष्मन्त्रण जीवोंका सब साक्ष्यमात्र के है ।
सम्बन्ध और सम्बन्धित्वकी उक्त और अनुक्त प्रदेराविष्मन्त्रण जीवोंका सब साके
असंख्यातमें भागप्रमाण है । यह स्पष्ट है । सामान्य विचारमें ये सब पदित हो जानते
हैं आपका समान ज्ञानका मूलना की है ।

॥ ७०. आदेशमें मार्गप्रमाण अहायस प्रकृतियोंकी उक्त और अनुक्त प्रदेराविष्मन्त्रण
जीवोंका साके और अज्ञानमें भागप्रमाण के सब स्वरूप किया है । इसी प्रकार सब मारकी सब
पञ्च ग्रन्थ निरस सब अनुक्त और सब दृष्टीमें जानना चाहिए । इस प्रकार अनाहारक मार्गप्रमाण
नहीं जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—दृष्टीसं प्रमाण मारकी आदि उक्त मार्गप्रमाण के सब दी साके
असंख्यातमें भागप्रमाण है । इत्यति इनमें सब प्रकृतियोंकी उक्त और अनुक्त प्रदेरा-
विष्मन्त्रण जीवोंका सब साके असंख्यातमें भागप्रमाण के है । अनाहारक मार्गप्रमाण
नहीं इसी प्रकार विचार कर सब पदित किया जा सकता है । इत्यति उक्त मार्गप्रमाणमें सब
का सब समान ज्ञानकी मूलना की है ।

॥ ७१. अपण्य मन्त्रण है । निरसा तो मन्त्रण है—आप और आदेश । आपसे सब
प्रकृतियोंकी उक्त और अज्ञान प्रदेराविष्मन्त्रण जीवोंका सब उक्त और अनुक्त प्रदेरा-
विष्मन्त्रण जीवोंका ज्ञाना है । इसी प्रकार सब भागप्रमाणों में जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मन्त्रण सब प्रकृतियोंकी अपण्य प्रदेराविष्मन्त्रण विचारितका ज्ञाना

§ ७२. पोसणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णि०-
ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीस पयहीणमुक्क० पदेसविहत्तिएहि केवडियं खेतं
पोसिदं ? लोगस्स असंखे०भागो । अणुक्क० सन्वलोगो । सम्म०-सम्मामि० उक्क०
पदे० केव० ? लोगस्स असंखे०भागो । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोइस
भागा देसूणा सन्वलोगो वा ।

§ ७३. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयहीणमुक्क० लोग० असंखे०भागो ।
अणुक्क० लोग० असंखे०भागो छचोइस भागा देसूणा । एवं सत्तमाए । पढमाए पुढवीए
खेत्तभंगो । विद्यादि जाब छट्ठि त्ति अट्ठावीस पयहीणमुक्क० खेत्तं । अणुक्क० लोग०
असंखे०भागो एक-वे-तिण्णि-चत्तारि-पंचचोइस भागा देसूणा ।

विदित होता है कि इनकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र उत्कृष्ट और
अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके समान बन जाता है, इसलिए उसे उनके समान जाननेकी
सूचना की है ।

§ ७२ स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो
प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने
कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इनकी
अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके
असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके
असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका
स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके स्वामित्वको देखनेसे विदित होता
है कि उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक सम्भव नहीं है, इसलिए वह उक्त प्रमाण
कहा है । तथा छ्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एकेन्द्रिय आदि जीवोंके भी सम्भव है,
इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है । तथा
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके
असंख्यातवें भाग है, क्योंकि ये जीव पत्यके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होते, इसलिए
इनका वर्तमान स्पर्शन उक्त क्षेत्रप्रमाण ही प्राप्त होता है । तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिकी
अपेक्षा यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और मारणान्तिक व
उपपादपदकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण बन जानेसे उक्त प्रमाण कहा है ।

§ ७३ आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने
लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन
किया है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भङ्ग है ।
दूसरीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले
जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग,
त्रसनालीके कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार और कुछ कम पाँच बटे

§ ७४ निरिबगगदीए निरिबस्तमु अदीसं पपदीममुक० सोग० असंसे०
 भागा । अमुक० मद्रस्तागा । सम्म०-सम्मामि० उक० स्तेरं । अमुक० साग०
 अमंग०-भागा मद्रस्तागा वा । सम्मपिदिपतिरिबस्तमु अदीसं पपदीनं पद०
 सागस्म अमंग०-भागो । अमुक० सागस्म असंसे०-भागा सम्मस्तागो वा । एवं
 सम्ममुस्मान् ।

§ ७५ दवगदीए दवमु अदीसं पपदीममुक० सवमंगो । अमुक० साग०
 अमंग०-भागा मद्रस्तागामभागा दवगा । एवं सादम्पीसागानं । मद्रम०-वाज०-
 भागि० अदीसं पपदागमुक० अतं । अमुक० साग० असंसे०-भागा अमुक०-अ

णवचोदस० देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो ति अट्टावीसं पयडीणं उक्क० खेत्तं । अणुक्क० लोग० असंखे० भागो अट्टचो० देसूणा । आणदादि जाव अच्चुदो ति अट्टावीसं पयडीणमुक्क० खेत्तं । अणुक्क० लोग० असंखे० भागो छचोदस० देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं णेदच्चं जाव अणाहारए ति ।

§ ७६. जहणणए पयदं । दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे० भागो । अज० सव्वलोगो । सम्म-सम्मापि० जह० अज० लोग० असंखे० भागो अट्ट-चोद० देसूणा सव्वलोगो वा ।

§ ७७. आदेसेण णेरइएसु अट्टावीसं पयडीणं ज० लोग० असंखे० भागो । अज० लोग० असंखे० भागो छचोदस० देसूणा । एवं सत्तमाए । पढमाए पुढवीए खेत्तभंगो । विदियादि जाव छट्ठि ति अट्टावीसं पयडीणं जह० खेत्तं । अज० लोग०

आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सनकुमारसे लेकर सहस्सार कल्प तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प-तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आगे क्षेत्रके समान भङ्ग है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र अपने अपने वर्तमान आदि स्पर्शनको ध्यानमें रख कर सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकार है—ओघ और आदेश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति एकेन्द्रियादि जीवोंके भी सम्भव है और देवोंके विहारवत्त्वस्थान आदिके समय भी हो सकती है । तथा इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ही, इसलिए इनकी दोनों प्रकारकी प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७७. आदेशसे नारकिर्योंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भङ्ग

असंसे० मागो एक-ने विणिण-वचारि-पंचपाहस मागा वा दसूणा ।

‡ ७८. विरिक्कलगाईए विरिक्कलसु अम्भीसं पयडीणं अह० संसं । अत्र० सम्म
सोगो । सम्म०-सम्मायि० अह० अत्र० सोग० असंसे० मागा सम्मसोगो वा । सम्म-
पंचिदियविरिक्कल-सम्मपणुस्सेसु अम्भीसं पयडीणं अह० माग असंसे० मागो । अत्र०
सोगसस असंसे० मागो सम्ममागा वा । सम्म०-सम्मायि० अह०-अत्र० सोग०
असंसे० मागो सम्ममागो वा ।

‡ ७९. दवगवीए दवसु अम्भीसं पयडीणं अह० सोग० असंसे० मागो । अत्र०
सोग० असंसे० मागो अह-अवचोहस दसूणा । सम्म-सम्मायि० अह० अत्र० सोग०
असंसे० मागा अह-अवचोह दसूणा ।

‡ ८०. मवण-वाण-ओइसि० वार्थिसं पयडीणं अह० माग० असंसे०

इ । वृत्तसे लेकर बड़ी तककी वृत्तिविधिमें अट्ठारस मृत्तियोंकी अथवा प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंके स्वरूप के समान है । अत्राप्य प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने लोकके अस्तित्वतर्हे मग तथा असंसे वसनासीके कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन कुछ कम चार और कुछ कम पाँच व चौर अथवा प्रमाय केवळ स्वरूप किया है ।

विशेषार्थ—मृत्तियोंमें और उनके अन्तर् अर्थोंमें कुछ और अनुकूल प्रदेश-
विम्बित्वा अथवा वा स्वरूप पटित करके बतला भाव हैं उसी प्रकार वहाँ भी पटित कर लेना चाहिए । आगे भी अपनी अपनी विशेषता जानकर स्वरूप पटित कर लेना चाहिए ।

‡ ८१. विरिक्कलगाईए विरिक्कलसु अम्भीस मृत्तियोंकी अथवा प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंके स्वरूप के समान है । अत्राप्य प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने सब लोकप्रमाय केवळ स्वरूप किया है । सम्मत्त्व और सम्मग्निध्यात्वकी अथवा और अवस्थ प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने लोकके अस्तित्वतर्हे मग और सब लोकप्रमाय केवळ स्वरूप किया है । सब पञ्च भिन्न विरिक्क और सब मनुष्योंमें अम्भीस मृत्तियोंकी अथवा प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने लोकके अस्तित्वतर्हे मगप्रमाय केवळ स्वरूप किया है । अत्राप्य प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने लोकके अस्तित्वतर्हे मग और सब लोकप्रमाय केवळ स्वरूप किया है । सम्मत्त्व और सम्मग्निध्यात्व की अथवा प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने लोकके अस्तित्वतर्हे मग और सब लोकप्रमाय केवळ स्वरूप किया है ।

‡ ८२. वचगतिमें अम्भीस मृत्तियोंकी अथवा प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने लोकके अस्तित्वतर्हे मग और वसनासीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौर मगप्रमाय केवळ स्वरूप किया है । सम्मत्त्व और सम्मग्निध्यात्वकी अथवा प्रदेशविम्बित्वासे जीवोंने लोकके अस्तित्वतर्हे मग और वसनासीके कुछ कम आठ तथा कुछ कम नौ बटे चौर मगप्रमाय केवळ स्वरूप किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्य वेधोंमें अनन्तानुबन्धीमनुष्यकी अथवा प्रदेशविम्बित्वा हीने आयुवासे वेधोंमें होती है और अन्त स्वरूप लोकके अस्तित्वतर्हे मगप्रमाय है, इसलिये उनकी अथवा स्वरूप कुछ प्रमाय क्या है । लेप कथन सुगम है ।

‡ ८३. मवणवासी, अन्तर और ओपेतिरी वेधोंमें वार्थिस मृत्तियोंकी अथवा प्रदेशविम्बित्वा

भागो । अज० लोग० असंखे० भागो अद्धुद्द-अट्ट-णवचो० देसूणा । सम्म-सम्मामि० जह०-अज० लोग० असंखे० भागो अद्धुद्द-अट्ट-णवचोदस० देसूणा । णवरि जोदिसि० सम्म०-सम्मामि० जह० लोग० असंखे० भागो अद्धुद्द वा अट्टचोद० देसूणा । अणंताणु०४ जह० लोग० असंखे० भागो अद्धुद्द-अट्टचोद० देसूणा । अज० लोग० असंखे० भागो अद्धुद्द-अट्ट-णवचो० देसूणा ।

§ ८१. सोहम्मीसाण० देवोवं । णवरि अणंताणु० चउक्क० जह० लोगस्स असंखे० भागो अट्टचोद० देसूणा ।

§ ८२. सणक्कुमारदि जाव सहस्सारो ति वावीसं पयडीण जह० खेतं । अज० लोग० असंखे० भागो अट्टचो० देसूणा । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क०

वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनाली-के कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतनी विशेषता है कि ज्योतिषी देवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—उक्त देवोंमें एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्ति नहीं होती, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति-वाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण नहीं कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ८१. सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सौधर्मद्विकमें विहारवत्त्वस्थान आदिके समय भी अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्ति वन जाती है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण भी कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ८२. सनत्कुमारसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देवोंमें बार्हस्पति प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति-

नह०-अम० शोग० अर्त्तले० मागो भद्रपोर० देसूना । माणदादि जाव अण्डुदो वि
बावीस पयडीर्ण नह० शोग० अर्त्तले० मागो । मज० शोग० अर्त्तले० मागो बजार०
देसूना । सम्म०-सम्पामि०-अर्णताणु० चरक० नह०-अम० शोग० अर्त्तले० मागो ब-
चोर देसूना । चरि खेचर्मगो । एवं नैदुर्ण जाव अणाहारि पि ।

⊗ सम्मकम्माय पायाजीवहि काखो कायम्भो ।

१८३ सुमपयेव सुतं । संपहि पदेण सुतेण सुविदस्वस्स उबारणं वतइस्सामो ।
तं नहा—काखो इविहो, नहण्णमो उवस्समो वेदि । उवस्से पयव । इविहो
विदेसो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण मिच्छत-वारसक०-मङ्गोक० उव०
पदेसपि० नह० पयसपमो, उव० आबधि० अर्त्तले० मागो । अणुव सम्मदा ।
सम्म०-सम्पामि०-अणुसंज०-पुरिसवेद० उव० पदे० नह० पयस०, उव० संसेका
सपया । अणुव० सम्मदा ।

वाते जीवने लोकके अर्त्तक्यातवै मागप्रमाय और बसनालीके कुछ कम भाट बटे चौद माग-
प्रमाय क्षेत्रका स्पर्श किंवा है । आनतसे लेकर अच्युत कस्य तकके देवोंमें बाईस मृत्तियोंकी
बचम्य प्रदेशविमिच्छित्तले जीवने लोकके अर्त्तक्यातवै मागप्रमाय क्षेत्रका स्पर्श किंवा है ।
अबचम्य प्रदेशविमिच्छित्तले जीवने लोकके अर्त्तक्यातवै मागप्रमाय और बसनालीके
कुछ कम बड़ बटे चौद मागप्रमाय क्षेत्रका स्पर्श किंवा है । सम्मक्त्त सम्पामिच्छात् और
अनन्तामुपवन्वीचतुष्पदी बचम्य और अबचम्य प्रदेशविमिच्छित्तले जीवने लोकके अर्त्त-
क्यातवै मागप्रमाय और बसनालीके कुछ कम बड़ बटे चौद मागप्रमाय क्षेत्रका स्पर्श किंवा
है । इनसे ऊपरके देवोंमें क्षेत्रके समान बड़ है । इस प्रकार अन्यहारक मार्गका एक न
जान्य चाहिए ।

इस प्रकार स्पर्श समान हुआ ।

⊗ सब कर्मोंका जाना जीवोंकी अपेक्षा काल करना चाहिए ।

१८४ एहं सूत्रं सुगमं है । अब इस सूत्रसे सूचित हुए कर्मोंकी लम्बायणा वत्तताये हैं ।
एक काल हो प्रकारका है—बचम्य और उव० । उव०का प्रकार है । निर्वेरा हो प्रकारका
है—आप और आदेरा । ओपसे मिच्छात्त बाव कपाव और भाट नीकपायोंकी उव०
प्रदेशविमिच्छित्त बचम्य कास एक समय है और उव० कास आबधितके अर्त्तक्यातवै मागप्रमाय
है । अणुव० प्रदेशविमिच्छित्त कास सबैदा है । सम्मक्त्त सम्पामिच्छात् बार संजतन और
पुरपवेरकी उव० प्रदेशविमिच्छित्त बचम्य कास एक समय है और उव० कास उव० कास समय
है । अणुव० प्रदेशविमिच्छित्त कास सबैदा है ।

विशेषार्थ— सब मृत्तियोंकी उव० प्रदेशविमिच्छित्त एक समय तक हो और द्वितीय
समयमें न हो उव० सम्मक्त्त है, इसलिय सबकी उव० प्रदेशविमिच्छित्त बचम्य कास एक समय
का है । तथा मिच्छात्त आबधिकी उव० प्रदेशविमिच्छित्त जाना जीवोंकी अपेक्षा लगातार
अमरत्वान समय तक है । सफ़ती है, इसलिय इनकी उव० प्रदेशविमिच्छित्त उव० कास आबधितके
अर्त्तक्यातवै मागप्रमाय का है और ओप तथा मृत्तियोंकी उव० प्रदेशविमिच्छित्त जाना जीवोंकी

§ ८४. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणमुक्कं पदे० जह० एगस०, उक्कं आवलि० असंखे० भागो । अणुक्कं सव्वद्धा । सम्मत्त० ओघं । एवं पढमाए । विदियादि जाव सत्तमि ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्कं पदे० जह० एगस०, उक्कं आवलि० असंखे० भागो । अणुक्कं सव्वद्धा ।

§ ८५. तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ताणं पढमपुढविभंगो । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं विदियपुढविभंगो । एवं पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ताणं ।

§ ८६. मणुस्सगदीए मणुस्स० पिच्छत्त-वारसक०-वण्णोक० उक्कं पदे० जह० एगस०, उक्कं आवलि० असंखे० भागो । अणुक्कं सव्वद्धा । सम्म०-सम्मापि०-चदुसंजल० तिण्हं वेदाणमुक्कं जह० एगस०, उक्कं संखेज्जा समया । अणुक्कं सव्वद्धा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्कं पदे० जह० एगस०, उक्कं

अपेक्षा निरन्तर संख्यात समय तक हो सकती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। नाना जीवोंकी अपेक्षा ऐसा समय नहीं प्राप्त होता जब किसी प्रकृतिकी सत्ता न हो, इसलिए सबकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा कहा है।

§ ८४ आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं तक प्रत्येक पृथिवीमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और पहली पृथिवीमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान वन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ८५. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त जीवोंमें पहिली पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रारम्भके तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग वन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ८६. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और तीन वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अट्ठाईस

संसे० समया । अशुद्ध० सम्पत्ता । एवमाणदादि नाव सम्पत्तिरिति ।

§ ८७ मनुसमयः० दम्भीसं पयडीजसुद्ध० पदे नह० एमस०, पद्ध०
भावसि० मसंसे०मानो । अशुद्ध० नह० सुवायव समकृता, पद्ध० पद्धि०
मसंसे०मानो । सम्म०-सम्मायि० एवं येव । नवरि अशुद्ध० नह० एमस० ।

§ ८८ देवमदीए देवानं पदमपुहविर्मनो । एवं सोहम्मादि नाव सहस्तारो वि ।
मवज०-जाज०-बोइसि० विविपपुहविर्मनो । एवं जेहम्मा नाव अजाहारि वि ।

प्रकृतियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शित्य बचन्य काल एक समय है और बहुत काल संख्यात समय है । अनुक्त्य प्रवेशविमर्शित्य काल सर्वथा है । इसी प्रकार आनत कल्पसे लेकर सर्वावस्थिति तक के देवोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंमें जिस प्रकार बोधमें पठित करके बज्जा आये हैं उस प्रकार पठित कर लेना चाहिये । मात्र जीवेव और मनुष्यकेवही बहुत प्रवेशविमर्शित्य बहुत काल इनमें अपने स्वामित्वके अनुसार संख्यात समय ही प्राप्त होता है इसलिये इन दोनों प्रकृतियोंकी परिगणना यहाँ सम्भव आधिके स्वय की है । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यी और सर्वावस्थितिके देव तो संख्यात होते ही हैं । आनतारिमें वे ही स्वयन् होते हैं । इसलिये इनमें अद्वाइस प्रकृतियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शित्य बहुत काल संख्यात समय बननेसे बचप्रमाण कहा है । रोप कवन सुगम है ।

§ ८९ मनुष्य अपर्वात्तमें दम्भीसं प्रकृतियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शित्य बचन्य काल एक समय है और बहुत काल आवधिके असंख्यातमें मागप्रमाण है । अनुक्त्य प्रवेशविमर्शित्य बचन्य काल एक समय कम द्रुतक मवज्जप्रमाण है और बहुत काल पत्तके असंख्यातमें मागप्रमाण है । सम्पत्त और सम्पत्तिध्यात्वका मझ इसीप्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शित्य बचन्य काल एक समय है ।

विशेषार्थ—मनुष्य अपर्वात्त वह सामान्य मार्गका है । यह सम्भव है कि इस मार्गमें माना जीव द्रुतक मव तक ही रहे । इसलिये इस कालमेंसे बहुत प्रवेशविमर्शित्य एक समय काल कम है पर अनुक्त्य प्रवेशविमर्शित्य बचन्य काल एक समय कम द्रुतक मवज्जप्रमाण बन जानेसे यहाँ दम्भीसं प्रकृतियोंकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शित्य बचन्य काल एक समय कम द्रुतक मवज्जप्रमाण कहा है । तथा इस मार्गका बहुत काल पत्तके असंख्यातमें मागप्रमाण है, इसलिये यहाँ सब प्रकृतियोंकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शित्य बहुत काल एक काल प्रमाण कहा है । सम्पत्त और सम्पत्तिध्यात्व व वज्ज जना प्रकृतियाँ हैं इसलिये यहाँ इनकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शित्य बचन्य काल एक समय बन जानेसे एक काल प्रमाण कहा है । रोप कवन सुगम है ।

§ ९० देवगतिमें देवोंमें पहली प्रकृतिके समान मझ है । इसी प्रकार सोवर्मकल्पसे लेकर छद्धार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें दूसरी प्रकृतिके समान मझ है । इस प्रकार अजाहारक मार्गका तक ले जाया चाहिये ।

विशेषार्थ—सोवर्मादि देवोंमें भी प्रथम प्रकृतिके मारकियोंके समान दृष्टदृष्टवेदक सम्पत्ति जीव कपत्र होत हैं इसलिये इनमें प्रथम प्रकृतिके मारकियोंके समान मझ बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है । तथा भवनशिकों दृष्टदृष्टवेदकसम्पत्ति जीव मर कर

§ ८६. जहणणए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अट्ठावीसं पयडीणं जह० पदे० केव० ? जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-सव्वदेवा त्ति । णवरि मणुस्स-अपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणं जह० पदे० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० जह० खुदाभवग्गहणं समयुणं, सत्तणोकसायाणमंतोमुहुत्त, सम्म०-सम्माणि० एगस०; सव्वेसिमुक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

❀ अंतरं । णाणाजीवेहि सव्वकम्माण जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा ।

§ ६०. एदेण सुत्तेण सूचिदजहण्णुकस्संतराणमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—

नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमे दूसरी पृथिवीके नारकियोंके समान भङ्ग बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ ।

§ ८६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जुलक भव ग्रहणप्रमाण है, सात नोकषायोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षणिकके समय होती है । यह सम्भव है कि एक या अधिक जीव एक समय तक ही इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करें और यह भी सम्भव है कि क्रमसे नाना जीव संख्यात समय तक इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करते रहें, इसलिए ओघसे इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । अपने अपने स्वामित्वको देखते हुए सब नारकी आदि मार्गणाओंमें यह काल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र मनुष्यअपर्याप्तकोंमें विशेषता है । बात यह है कि वह सान्तर मार्गणा है, इसलिए उसमें सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अलग अलग प्राप्त होता है और उत्कृष्ट काल पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । विशेष विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा काल समाप्त हुआ ।

❀ अन्तर । नाना जीवोंकी अपेक्षा सब कर्मोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ६०. इस सूत्रसे सूचित हुए जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरको उच्चारणके अनुसार वतलाते

अंतरं द्विहो—अहण्णमुक्तं च । उक्तं पयदं । द्विहो मिहो सो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण अद्वावीसं पयहीणमुक्तं पदे० नह० एगसगमो, उक्त० अजतकास मसंस्त्रा पागसपरियहा । मजुक्तं णत्ति अंतरं । एवं सम्भजेरइय-सम्भतिरिक्त सम्भमशुस्त-सम्भदेवा ति । जपरि मजुसअपज्ज० अद्वावीसं पयहीणममुक्तं नह० एगस०, उक्त पस्सिदो० असंस्त्र० पागो । एवं गेयस्सं जाय अणाहारि ति ।

१६१ नहण्णए पयदं । द्विहो मिहो सो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण जहा उक्तसंतरं पकविदं तथा नहण्णानहण्णंतरपरूपणा परूपदम्भा ।

१६२ सण्णियासो द्विहो—नहण्णमो उक्तसमो चेदि । उक्तसए पयदं । द्विहो मिहो सा—ओपेण आदेसेण य । ओपेण पिच्छत्तस्स उक्तसपदेसविहविमो

है । वरा—अन्तर हो प्रकरका है—अपम्य और उक्त । उक्तका प्रकरका है । निर्देश हो प्रकरका है—ओप और आदेश । ओपसे अद्वाईस प्रहृतियोंकी उक्त प्रदेशविमिच्छिन्न अपम्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके कारण है । अनुसृत प्रदेशविमिच्छिन्न अन्तरअज्ञ नहीं है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्य्यक, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए । इसी विरोधा है कि अनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें अद्वाइस प्रहृतियोंकी अनुसृत प्रदेशविमिच्छिन्न अपम्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर पल्पके असंख्यातवें आगममात्र है । इस प्रकार अनाहारक मार्गका एक से जाना चाहिए ।

विशेषार्थ उक्त प्रदेशविमिच्छिन्न गुणितकर्मार्थिक जीवोंके होती है । यह सम्भव है कि गुणितकर्मार्थिकविमिच्छिन्न प्रकार एक या ज्ञाता जीव एक समयके अन्तरसे अद्वाईस प्रहृतियोंकी अलग पलग उक्त प्रदेशविमिच्छिन्न करें और अमन्त कालके अन्तरसे करें, इसलिये यहाँ ओपसे और तति मार्गकाके सब भर्षोंमें अद्वाईस प्रहृतियोंकी उक्त प्रदेशविमिच्छिन्न अपम्य अन्तर एक समय और उक्त अन्तर अनन्त काल कहा है । यहाँ सबकी अनुसृत प्रदेशविमिच्छिन्न अन्तरअज्ञ नहीं है वह स्पष्ट ही है । यात्र मनुष्यअपर्याप्त यह साम्प्र मार्गका है, इसलिये हारमें अपने अन्तरअज्ञ अनुसृत अद्वाईस प्रहृतियोंकी अनुसृत प्रदेशविमिच्छिन्न अपम्य अन्तर एक समय और उक्त अन्तर पल्पके असंख्यातवें आगममात्र कहा है । सेप कथन स्पष्ट ही है ।

१६१ अपम्यका प्रकरका है । निर्देश वा प्रकरका है—आप और आदेश । ओपसे त्रिम प्रकार उक्त पदेके आपपसे अन्तरअज्ञ कहा है उस प्रकार अपम्य और अपम्य प्रदेश-विमिच्छिन्न अन्तरअज्ञकी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

विशेषार्थ—अपम्य प्रदेशविमिच्छिन्न क्षणिककर्मार्थिक जीवोंके होती है, इसलिये सब प्रहृतियोंकी अपम्य और अपम्य प्रदेशविमिच्छिन्न अन्तर काल उक्त और अनुसृत प्रदेश-विमिच्छिन्नके समान वन जामने कनक समान जावनेकी सूचना की है ।

इस प्रकार मात्रा जीवोंकी अपेक्षा अन्तरअज्ञ समान हुआ ।

१६२ सन्निचरै वा प्रकरका है—अपम्य और उक्त । उक्तका प्रकरका है । निर्देश वा प्रकरका है—आप और आदेश । आपसे मिध्यात्वकी उक्त प्रदेशविमिच्छिन्न जीव

बारसकसाय-छण्णोकसायाणं णियमा विहत्तिओ । तं तु उक्कस्सादो अणुक्कस्सं वेढाण-
पदिदं अणंतभागहीणं असंखेज्जभागहीणं वा । इत्थि-णवुंसयवेदाणं णियमा अणुक्कस्स-
विहत्तिओ असंखेज्जभागहीणो । इत्थिवेददब्बेण संखेज्जगुणहीणेण होदब्बं, णेरइय-
इत्थिवेदबंधगद्धादो कुरवित्थिवेदबंधगद्धाए लद्धणवुंसयवेदबंधगद्धा संखेज्जभागवहु-
भागा । एवं संखेज्जगुणत्तादो कुरवेसु इत्थिवेदपूरणकालो एगगुणहाणीए असंखेज्जदि-
भागो त्ति कट्ठु णासंखे०भागहीणत्तं जुत्तं, तत्थ असंखेज्जाणं गुणहाणीणमुवलंभादो ।
णोवलंभो असिद्धो, 'रदीए उक्कस्सदब्बादो इत्थिवेदुक्कस्सदब्बं संखेज्जगुण' इदि उवरि
भण्णमाणअप्पावहुअमुत्तेण तत्थ असंखेज्जाणं गुणहाणीणमुवलंभादो । णवुंसयवेद-
दब्बेण वि संखेज्जभागहीणेण होदब्बं, ईसाणदेवेसु णवुंसयवेदेण त्थावरबंधयद्धं सयलं
लद्धूण तसबंधगद्धाए पुणो संखेज्जखंडीकदाए लद्धवहुभागत्तादो । कुरवीसाणदेवेसु
इत्थि-णवुंसयवेदाणि आवूरिय णेरइएसुप्पज्जिय उक्कस्सीकयमिच्छत्तस्स असंखे०भाग-
हाणी होदि त्ति वोत्तु जुत्तं, तेत्तीस सागरोवमेसु गल्लिदासंखेज्जगुणहाणिदब्बस्स
णिरयगइसंचयं मोत्तूण कुरवीसाणदेवेसु संचिददब्बस्स अवट्ठाणविरोहादो । तम्हा

वारह कषाय और छद्म नोकपायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है । किन्तु वह इसकी उत्कृष्ट
प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट
प्रदेशविभक्तिवाला होता है तो उत्कृष्टकी अपेक्षा उसके अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति दो स्थान पतित
होती है—या तो अनन्तभागहीन होती है या असंख्यातभाग हीन होती है । स्त्रीवेद और
नपुंसकवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला होता है जो नियमसे असंख्यातभागहीन
प्रदेशविभक्तिवाला होता है ।

शंका — स्त्रीवेदका द्रव्य संख्यातगुणा हीन होना चाहिए, क्योंकि नारकियोंमें जो स्त्रीवेदका

बन्धक काल है उससे तथा देवकुरु और उत्तरकुरुमें जो स्त्रीवेदका बन्धककाल है उससे प्राप्त हुआ
नपुंसकवेदका बन्धक काल संख्यात बहुभाग अधिक देखा जाता है । इसप्रकार संख्यातगुणा हीनसे
देवकुरु उत्तरकुरुमें स्त्रीवेदका पूरणकाल एक गुणहानिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ऐसा मानकर
उसे असंख्यातवें भागहीन मानना उचित नहीं है, क्योंकि वहा असंख्यात गुणहानियाँ उपलब्ध
होती है और उनका प्राप्त होना असम्भव भी नहीं है, क्योंकि रतिके उत्कृष्ट द्रव्यसे स्त्रीवेदका
उत्कृष्ट द्रव्य संख्यातगुणा है इस प्रकार आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्व सूत्रके अनुसार वहाँ
असंख्यात गुणहानियाँ उपलब्ध होती हैं । तथा नपुंसकवेदके द्रव्यको भी संख्यातवें भाग हीन नहीं
होना चाहिए, क्योंकि ईशान कल्पके देवोंमें नपुंसकवेदके साथ समस्त स्थावर बन्धक कालको प्राप्त
करके पुनः त्रसबन्धक कालके संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग प्राप्त होता है । यदि कहा जाय
कि उत्तरकुरु-देवकुरु और ऐशान कल्पके देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको पूरकर तथा नारकियोंमें
उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके द्रव्यको उत्कृष्ट करनेवाले जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यात
भागहानि होती है सो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि तेतीस सागरप्रमाण कालके भीतर
असंख्यात गुणहानिप्रमाण द्रव्यके गल जाने पर नरकगतिस्म्वन्धी सञ्चयको छोड़कर कुरु और
ऐशान कल्पके देवोंमें संचित हुए द्रव्यका अवस्थान माननेमें विरोध आता है, इसलिये
असंख्यातभागहीनपना नहीं बनता है ।

असंख्येयमागहीनर्त्तनं न पश्येति ? अ, कुरवीसाणवेवेसु सङ्कस्तीकयश्चि-नर्त्तुसपवेद
 दृश्यं गेरइपमुपस्थिय सङ्कस्ससंकिसेसुसङ्कट्टिय सङ्कस्तीकयमिच्छत्तस्स इति-नर्त्तुसपवेद
 दृग्भाजमसंख्ये० मागहाणि पट्टि विरोहाभावाद्वा । एयसुनहाणीय असंख्ये० भाममेतद्व्यखेन
 तेवीससागरोपमेसु द्विवदध्यसुसङ्कट्टिय सयसदध्यस्स असंख्ये० भागमेतं चेव तत्त्व परेदि
 ति इदो नय्यदे ? एवमादो चव सण्णिपासादो । किं च गुणितकम्मसिए 'अवरिद्धीणं
 द्विदीणं भित्तेयस्स सङ्कस्सपदं हेडिद्धीणं द्विदीणं गित्तेयस्स अहण्णपदं' ति पेयणासुत्तादो
 च नय्यदे अहा असंख्ये० भामो चेव मय्यदि ति । अहुसंनसुण पुरिसवेद० गियमा
 मशुक्क संख्येयगुणहीणा । सम्मत्तसम्मामिच्छत्तात्तं गियमा अविइत्तिओ, गुणित
 कम्मसियत्तादो । एवं चारसकसाय-अणो कसायत्तं ।

समाधान—यहाँ क्योंकि इन्द्रासी बीबोंमें और पेरान कम्मके बीबोंमें उत्कृष्ट किये गये
 स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके इन्द्रको कारकियोंमें उत्पन्न होकर उत्कृष्ट संकलेरा हाथ उत्कर्षित करके
 जिसने मिथ्यात्वके इन्द्रको उत्कृष्ट किया है उसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका इन्द्र असंख्यात
 मागहीन होता है इसमें कोई विरोध नहीं आता ।

संज्ञा—एक गुणव्यक्तिके असंख्यातवें भागप्रमाण कात्तके हाथ तेवीस सागर कात्तके
 भीतर स्थित इन्द्रको उत्कर्ष करके समस्त इन्द्रके असंख्यातवें भागप्रमाण इन्द्रको ही बाँट
 बाँट कर रहा है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है । दूसरे गुणितकर्मार्थिक बीबोंमें उपरित्त
 स्थितियोंके निष्कर्ष उत्कृष्ट पद होता है और अचरित्त स्थितियोंके निष्कर्ष अपत्य पद होता
 है पेट्टा का अनात्तममें कहा है उससे जाना जाता है कि असंख्यातवें भाग ही गन्तव्य है ।

चार संन्यस्तन और पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छिन्ना होता है जो
 अनुत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छि संख्यातगुणी हीन होती है । सम्बन्ध और सम्बन्धिमित्यकी नियमसे
 अविर्मच्छिन्ना होता है, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छिन्ना बीब गुणितकर्मार्थिक
 है । इसी प्रकार बाह्य कणाय और अहं लोकपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष नाममा आदिप ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व बाह्य कणाय और अहं लोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छिन्ना स्वामी
 एक समान है, इसलिए मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छिन्नासे बीबके अन्त प्रकृतियोंके साथ
 जिस प्रकारका सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार बाह्य कणाय और अहं लोकपायोंकी उत्कृष्ट
 प्रदेराभिर्मच्छिन्नासे बीबके अन्त प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्ष बन जाता है यह एक कर्मका तात्पर्य
 है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि बाह्य कणायोंकी उत्कृष्ट कर्मस्थिति वालीस कोशकोही
 सागरप्रमाण है और अहं लोकपायोंकी उत्कृष्ट कर्मस्थिति संकल्पसे प्राप्त होती है जो वालीस
 कोशकोही सागरसे एक आवाजि कम है, अतः मिथ्यात्वकी गुणितकर्मार्थिकिय करते हुए जिस
 बीबके तीस कोशकोही सागर व्यतीत हो गये हैं उसके आगे इन कर्मों की गुणितकर्मार्थिकिय
 कपनी चाहिए । इस प्रकार कर्मसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छिन्ना समग्र इन कर्मों की भी
 उत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छि प्राप्त हो जाती है । अग्यया मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छिन्ना समग्र इन
 कर्मों की अनुत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छि पड़ती है । इसी प्रकार इन कर्मों की उत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छिन्ना
 समग्र मिथ्यात्वकी भी अनुत्कृष्ट प्रदेराभिर्मच्छि पड़ित कर लेनी चाहिए । यह इन

§ ६३. सम्मामि० उक्क० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त-सम्मात्ताणं णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा । अट्ठक्क०-अट्ठणोक्क० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा । चट्ठसंज०-पुरिस० णियमा अणुक्क० संखेज्जगुणहीणा । सम्मतमेवं चेव । णवरि मिच्छत्तं णत्थि । सम्मामि० णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा ।

§ ६४. इत्थिवेद० उक्क० विहत्तिओ मिच्छत्त-वारसक्क०--सत्तणोक्क० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा । चट्ठसंज०-पुरिस० णियमा अणुक्क० संखेज्जगुणहीणा ।

उन्नीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा परस्पर सन्निकर्षका विचार हुआ । अब रहे शेष कर्म सो इन कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय तीन वेद और चार संज्वलन कषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नहीं होती, अतः उस समय इन सात कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कही है । जो गुणितकर्मांशिक जीव मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कर रहा है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होता यह स्पष्ट ही है । शेष कथन परामर्श करके समझ लेना चाहिए ।

§ ६३ सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो नियमसे संख्यातगुणी हीन होती है । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके इसी प्रकार सन्निकर्ष करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होता । तथा इसके सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है ।

विशेषार्थ—जो गुणितकर्मांशिक जीव क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण होने पर सम्यग्मिथ्यात्वका और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके द्रव्यका सम्यक्त्वमें संक्रमण होने पर सम्यक्त्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है । इस प्रकार जिस समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है उस समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनोंका सत्त्व रहता है किन्तु वह अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्टरूप ही रहता है, क्योंकि उस समय तक मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे तो असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें संक्रमण हो लेता है । तथा सम्यक्त्वमें अभी सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यका संक्रमण नहीं हुआ है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका द्रव्य अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन कहा है । इसी प्रकार सम्यक्त्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके समय सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन घटित कर लेना चाहिए । इसके मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं रहता यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६४ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करनेवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है ।

एवं गर्भसंपन्नस्य । १५३ । १ । २ । ३ ।

१५३ पुरिसवेद० चक० पदेसविहितो बहुसंज्ञ० नियमा अशुक्ल० संसे-
गुणहीना । १५३ पुरिसवेद० चक० पदेसविहितो बहुसंज्ञ० नियमा अशुक्ल० संसे-
गुणहीना । १५३ पुरिस० नियमा अशुक्ल० असंसे० गुणहीना । माणसंज्ञ० चक० पदेस
विहितो हृदिघ्राणमविहितो । माया-सोमसंज्ञ० नियमा अशुक्ल० संसे० गुणहीना ।
कोपसंज्ञ० नियमा अशुक्ल० असंसे० गुणहीना । मायासंज्ञ० चक० पदेसविहितो
सोमसंज्ञ० नियमा अशुक्ल० संसे० गुणहीना । माणसंज्ञा० नियमा अशुक्ल
असंसे० गुणहीना । सोमसंज्ञा० चक० पदे० विहितो मायासंज्ञा० नियमा
अशुक्ल० असंसे० गुणहीना ।

चार संज्ञान की ओर पुरुषेश्वर की विभक्त से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । इसी प्रकार गर्भसंज्ञे की मुख्यता से सन्निकर्ष आचना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो तीन वाद्य कण्ठों की उत्कृष्ट प्रवेशविधि करके पञ्चविधि भोगमूर्तिमें उत्पन्न होता है उसके पञ्चव्यस्य असंख्यातर्षों भागप्रमाणा काय जाने पर जीवेश्वर की उत्कृष्ट प्रवेश-
विधि होती है । उस समय मिथ्यात्व आदि बीस महतियों की प्रवेशविधि अपने उत्कृष्ट की अपेक्षा असंख्यातर्षों भागप्रमाणा हीन हो जाती है, क्योंकि उस समय एक इतना इतना इत्य-
अपस्थितिगतता आदि के द्वारा गत बाध है और जिनका अन्य महतिरूप संख्यात संख्या है उनके इत्यस्य संख्यात भी हो जाता है । फिर भी यहाँ पर अपस्थितिगतता के द्वारा गतनेवासे इत्यस्य मुख्यता है । गर्भसंज्ञे की उत्कृष्ट प्रवेशविधि प्रेरणन रूपमें होती है । इसकी मुख्यता से भी इसी प्रकार सन्निकर्ष प्राप्त होता है, इसलिये उसे जीवेश्वर की मुख्यता से कहे गये सन्निकर्ष के समान आनेकी सूचना की है । शेष कथ्य स्पष्ट ही है ।

१५४ पुरुषेश्वर की उत्कृष्ट प्रवेशविधिकात्ते जीवके चार संज्ञान की विभक्त से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । चक० मोक्षयों की नियम से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । श्लेषसंज्ञान की उत्कृष्ट प्रवेशविधि-
वाले जीवके पुरुषेश्वर और संज्ञान महतियों के सिवा शेष महतियों का नियम से अस्तित्व होता है । तीन संज्ञानों की नियम से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । पुरुषेश्वर की विभक्त से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । माय-
संज्ञान की उत्कृष्ट प्रवेशविधिकात्ते जीवके संज्ञान महतियों के सिवा पूर्वे की शेष सब महतियों का नियम से अस्तित्व होता है । मायासंज्ञान और सोमसंज्ञान की नियम से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । कोपसंज्ञान की नियम से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । मायासंज्ञान की उत्कृष्ट प्रवेशविधिकात्ते जीवके सोम-
संज्ञान की नियम से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो संख्यातगुणी हीन होती है । माय-
संज्ञान की विभक्त से अनुक्त प्रवेशविधि होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । सोम-
संज्ञान की उत्कृष्ट प्रवेशविधिकात्ते जीवके मायासंज्ञान की विभक्त से अनुक्त प्रवेशविधि

§ ६६. आदेसेण णेरइएमु मिच्छ० उक्क० पदेसविहत्तिओ सोलसक०-छण्णोक०
 णियमा विहत्तिओ । तं तु वेदाणपदिदा अणंतभागहीणा असंखे०भागहीणा वा ।
 तिहं वेदाणं णियमा अणुक० असंखे०भागहीणा । सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्ताण-
 मविहत्तिओ । एवं सोलसक०-छण्णोकसायाणं । सम्म० उक्क० पदेसविहत्तिओ वारसक०-
 णवणोक० णियमा अणुक० असंखेज्जभागहीणा । सम्मामि० उक्क० पदे०विहत्ति०
 सम्म० णियमा अणुक० असंखेज्जगुणहीणा । मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० णियमा
 अणुक० असंखे०भागहीणा । इत्थिवेदं० उक्क० पदे०वि० मिच्छ०-सोलसक०-
 अट्ठणोक० णियमा अणुक० असंखे०भागहीणा । एवं णवुंसयवेदस्स । पुरिसवेदस्स
 एवं चेव । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहीणा, उक्कड्डणाए विणा देवेसु
 होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है ।

विशेषार्थ—यहाँ पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय छह नोकषाय और चार
 संज्वलनका, क्रोध संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय पुरुषवेद और मान आदि तीन संज्वलन
 का, मान संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय शेष तीन संज्वलनोंका, मायासंज्वलनकी उत्कृष्ट-
 प्रदेशविभक्तिके समय मान संज्वलन और लोभसंज्वलनका तथा लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-
 विभक्तिके समय मायासंज्वलनका भी सत्त्व रहता है, इसलिए जहाँ जिन प्रकृतियोंका सन्निकर्ष
 सम्भव है वह कहा है । मात्र विवक्षितकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति जिन प्रकृतियोंके अन्तिम स्थिति-
 काण्डकी अन्तिम फालिका पतन होने पर होती है उन प्रकृतियोंकी प्रदेशविभक्ति असंख्यात-
 गुणी हीन पाई जाती है और जिन प्रकृतियोंके स्थितिकाण्डकोंका घात होना शेष रहता है उनकी
 प्रदेशविभक्ति संख्यातगुणी हीन पाई जाती है ।

§ ६६. आदेशसे नारक्तियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला जीव सोलह कषाय
 और छह नोकषायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है । किन्तु वह इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-
 वाला भी होता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेश-
 विभक्तिवाला होता है तो उसके इनकी दो स्थान पतित अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती
 है—या तो अनन्तभाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है या असंख्यातभाग हीन
 अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है । तीन वेदोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है
 जो असंख्यातभाग हीन होती है । यह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्व से रहित होता है ।
 इसी प्रकार सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जाना चाहिये । सम्य-
 कत्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट
 प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-
 वाले जीवके सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन
 होती है । मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती
 है जो असंख्यातभागहीन होती है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व,
 सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यात
 भाग हीन होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । पुरुषवेदकी
 मुख्यतासे सन्निकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व और
 सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणी हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है, क्यों कि उत्कर्षणके बिना

गकिदासलेखपुणहागिताहो। शुनिहकर्मसियजकडिहमिप्यचवम्मे नहासखेन सम्यस-
सम्मापिच्छतेसु संकते असंसे० भागाहीनं किण्ण जायदे। न, सम्मादिहिजोकडुन्धर
पूचीकयहेहिमगोखुप्यासु असंसे० पुणहागिमेतासु मस्सिदासु असंसे० पुणहाभिदंसपादो।
एवं पटमाए। विदियादि जाय सचमि पि एव वेव। जवरि सम्म० पक्क० पदे०
विहसिगो मिच्छ०-सोखसक० जवणोक्क० भियया अजुक्क० असंसे० भागाहीना।
सम्मापि० गियया पक्क०। एवं सम्मापि०।

§ ६७ विरिक्क०-पंविदियतिरिक्क०-पंवि०तिरि०पक्क० देवगदीए देव०
सोहम्मादि जाय जवरिभगेवखा पि गेरहयपंगो। पंविदियतिरिक्कनाभिजीसु विदिय-
जुहविपंगो। एवं जवण-दाण०-जोदिसियाणं। पंविदियतिरिक्कअपक्कपणं
पंविदियतिरिक्कपक्कचयंगो। जवरि सम्म० पक्क० पदेसविहसि० सम्मापि० तं दु
वेहानपदिदं अर्जवयागहीनं असंसे० भागाहीनं। सेसपदा गियया अजुक्क० असंसे०-

देवोमें असंख्यात गुणानिर्वाण गल जाती हैं।

पञ्च-गुणिकर्ममिच्छा बीजके द्वारा मिथ्यात्वके इच्छा करके और इसे स्वी
कर्ममें सम्मत्त्व और सम्ममिथ्यात्वमें संक्रान्त कर देने पर इनका इच्छा असंख्यातमाग हीन क्यों
गयीं होय है ?

समाधान-गयीं, क्योंकि सम्ममिच्छाके अपकर्षणके द्वारा अबस्तन गोपुच्छाभेदे स्वतः
हो जानेसे असंख्यात गुणानिर्वाण गल जाने पर असंख्यातगुणानि देवी जाती है।

इसी प्रकार परती पृथिवीमें जामना चाहिये। दूसरीसे लेकर सतही पृथिवी तकके
मापिकर्मों में भी इसी प्रकार जामना चाहिये। इसी विशेषण है कि इनमें सम्मत्त्वकी उत्पत्ति
प्रदेशविमर्शिकसे बीजके मिथ्यात्व सोल्ल कयाय और मौ बोधपायोंकी नियमसे अनुत्पत्ति
प्रदेशविमर्शिक होती है जो असंख्यातमाग हीन होती है। इसके सम्ममिथ्यात्वकी नियम
से उत्पत्ति प्रदेशविमर्शिक होती है। इसी प्रकार सम्ममिथ्यात्वकी सुख्यतासे अन्तिकर्ष
जामना चाहिये।

विशेषार्थ-छायाम्बसे मापिकर्मोंमें और परती पृथिवीमें कृतस्वदेवक सम्ममिच्छा बीज
उत्पन्न होय है, इसलिये कर्मसंभवत्वकी उत्पत्ति प्रदेशविमर्शिकसे समग्र मिथ्यात्व, सम्ममिथ्यात्व
और अनन्ताभुवन्वीचानुत्पत्ति उत्पन्न गयीं होनेसे समग्र अन्तिकर्षे गयीं गयी। परन्तु द्वितीयादि
पृथिवीमें कृतस्वदेवकसम्ममिच्छा बीज गयीं जवण होये, इसलिये गयीं सम्मत्त्वकी उत्पत्ति प्रदेश-
विमर्शिकसे समग्र उत्पत्ति उत्पन्न स्वाकार किया है। लेव कमन स्पष्ट ही है।

§ ६८ तिरेज्ज, पक्क मित्र तिरेज्ज, पक्क मित्र तिरेज्ज पर्याप्त, वैभक्तिमें छायाम्ब देव
और सोवर्मे कर्मसे लेकर जवरि भवेयक तकके देवोंमें मापिकर्मोंके समान भव्य है। पक्क मित्र-
तिरेज्ज मापिकर्मोंमें दूसरी पृथिवीके समान भव्य है। इसी प्रकार जवणवासी, व्यम्भर और
ज्वरिती देवोंमें जामना चाहिये। पक्क मित्र तिरेज्ज जवणवासीमें पक्क मित्र तिरेज्ज
पर्याप्तोंके समान भव्य है। इसी विशेषण है कि इनमें सम्मत्त्वकी उत्पत्ति प्रदेशविमर्शिकसे
बीजके सम्ममिथ्यात्वकी उत्पत्ति प्रदेशविमर्शिक भी होती है और अनुत्पत्ति प्रदेशविमर्शिक भी
होती है। यदि अनुत्पत्ति प्रदेशविमर्शिक होती है तो वह जो स्थान वसित होती है-या तो अव्यक्तमाग

भागहीणा । एवं सम्मामि० । एवं मणुस्सअपज्ज० ।

§ ६८. मणुसतियम्मि ओघं । णवरि मणुस्सिणीसु पुरिसवेद० उक्क० पदेस-
विह० इत्थिवेद० णियमा अणुक० असंखे० गुणहीणा । अणुदिसादि जाव सव्वद्वसिद्धि
ति मिच्छ० उक्क० पदे० वि० सम्मामिच्छत्त-सोलसक०-छण्णोक० णियमा तं तु
विट्ठाणपदिदा अणंतभागहीणा असंखे० भागहीणा वा । सम्मत्त० णियमा अणुक०
असंखे० भागहीणं । तिण्हं वेदाणं णियमा अणुक० असंखे० भागहीणा । एवं
सोलसक०-छण्णोक०-सम्मामिच्छत्ताणं । सम्मत्त० उक्क० पदे० विहत्ति० वारसक०-
णवणोक० णियमा अणुक० असंखे० भागहीणा । इत्थिवेद० उक्क० पदे० वि० मिच्छ०-
सम्मामि०-सोलसक०-अट्ठणोक० णियमा अणुक० असंखे० भागहीणा । सम्म०

हीन होती है या असंख्यातभाग हीन होती है । शेष प्रकृतियोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो विशेषता सामान्य नारकियोंमें वतला आये हैं वही यहाँ तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें घटित हो जाती है, इस लिए इनमें सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है । दूसरी पृथिवीके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी और भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्गृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग वन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक यह मार्गणा ऐसी है जिसमें मात्र मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं इसलिए इसमें अन्य प्ररूपणा तो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान वन जाने से उनके जाननेकी सूचना की है । किन्तु इसके सिवा जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६८. मनुष्यत्रिकमें ओषके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें पुरुष-वेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभवाले जीवके स्त्रीवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तभाग हीन होती है या असंख्यातभागहीन होती है । सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुण हीन होती है । तीन वेदोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यतभागहीन होती है । इसी प्रकार सोलह कषाय, छह नोकषाय और सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति

गियमा अनुक्त० अस्तंस्ते०गुणहीणा । एवं चर्तुस० । शुरिसवेदस्त देवाय० । एवं जेदम्
बाब अणाहारि चि ।

१६६ सहण्णए पपदं । बुविहो गि०—आपण आदसेण य । ओमण
मिच्छतस्त सहण्णपदसमिहचिओ सम्म०-सम्मापि० एकारसक०-तिणिगदं० जियमा
अग्रहण्ण० अस्तंस्तेअगुणअमहिया । सोमसंज०-इण्णाक० गियमा अग्रह० अस्तंस्तेअमम
अमहिया । सम्मत्तगुणेण पंचिदिपसु बद्धावडिसागरोवमाणि हिंदिण संचिद्विबहुगुण-
हाणिमेत्तपंचिद्वियसमपववदानं सगसगग्रहण्णद्वन्वादो अस्तंस्तेअगुणत्तं पात्तुण
णासंस्तेअमागअमहियत्तं, परंविपवकस्तजागादो वि पंचिद्वियग्रहण्णमोगस्स अस्तंस्ते-
गुणत्तुत्तंमादा । एत्थ परिहारो बुबदे—जदि वि वेद्धावडिसागरोवमेसु सोमसंजत्तं
चिरंवरं बंधवो वि समग्रहण्णद्वन्वादो विसेसादियं चव, अप्पदरकाहम्मि मीअद्वन्वादो

होती है जो अस्तंस्यात्तगुणीन होती है । सम्मत्तकी नियमसे अनुक्त प्रवेशिमिच्छि होती है जो
अस्तंस्यात्तगुणी हीन होती है । इसीप्रकार नपुंसकवैदकी मुख्यतासे स्मिन्कर्तृ जानना चाहिए ।
पुरुषवैदकी मुख्यतासे स्मिन्कर्तृ स्वाम्य वैदोंके समान है । इस प्रकार अनाहारक मार्गशा तक
जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओपसे जो स्मिन्कर्तृ कहा है वह अनुप्यत्रिभों अधिक पठित हो जाता
है, इसलिये हममें ओपके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र अनुप्यत्रिभोंमें पुरुषवैदकी
मुख्यतासे स्मिन्कर्तृमें कुछ फिरोका है, इसलिये इसका अन्तर्गते निर्देश किया है । अनुविदा
आदिमें सब वैद सम्मत्तहि होत हैं, इसलिये हममें अन्य वैदोंसे विशेषता होनेके कारण हममें
सब प्रवृत्तियोंकी मुख्यतासे स्मिन्कर्तृका अन्तर्गते निर्देश किया है । विशेष स्पष्टीकरण स्वामित्वके
वैदपर कर लेता चाहिए । आगे अनाहारक मार्गशा तक इसी प्रकार अपनी अपनी विशेषताको
जानकर स्मिन्कर्तृ पठित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार कुछ स्मिन्कर्तृ समाप्त हुआ ।

१६६. अस्मत्तक प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेरा । आपसे
निष्पातकी वचन्य प्रवेशिमिच्छिवाले जीवके सम्मत्त सम्मत्तनिष्पात म्याह कथाय और
तौम वैदकी नियमसे अत्रभन्य प्रवेशिमिच्छि होती है जो अस्तंस्यात्तगुणी अधिक होती है । सोम-
संस्तन और अत्र माकपयोंकी नियमसे अत्रभन्य प्रवेशिमिच्छि होती है जो अस्तंस्यात्तमें अग
अधिक होती है ।

अंका—सम्मत्त गुणके साथ जो पञ्चैन्द्रियोंमें दो अष्टासठ सागर अस्त तक परिभ्रमण
करता है उसके स्मिन्कर्तृ रूप केदु गुणानुपमाया पञ्चैन्द्रियवस्तुवादी समग्रमवद अपने
अपने वचन्य वस्तुकी अपेक्षा अस्तंस्यात्तगुणे होते हैं अस्तंस्यात्तमें अग अधिक नहीं, क्योंकि
पञ्चैन्द्रिय जीवके कुछ योगसे भी पञ्चैन्द्रिय जीवका वचन्य योग अस्तंस्यात्तगुण पाया
जाता है ।

समाधान—यहाँ तक रांका समाधान करते हैं—जो अष्टासठ सागर अस्तके भीतर
अस्तंस्यात्तवचन्य निरन्तर वचन करता हुआ भी अपने वचन्य वस्तुसे वह विशेष अधिक ही होता

भुजगारकालम्मि संचिददव्वस्स असंखे० भागव्वभहियत्तादो । केसि पि सगजहण्ण-
दव्वादो संखे० भागव्वभहियं संखे० गुणमसंखेज्जगुण वा किण्ण जायदे ? ण, असंखेज्ज-
भागव्वभहियं चेव, उक्कस्सजोगेण वेद्धावद्विसागरोवमाणि परिभमिदसम्मादिद्विम्मि वि
अप्परकालादो भुजगारकालस्स णियमेण विसेसाहियस्सेवुवलंभादो । एदं कुदो उव-
लव्वभदे । ‘णियमा असंखे० भागव्वभहिया’ त्ति उच्चारणाइरियवयणादो । कम्मपदेसाणं
भुजगारप्पदरभावो किंणिवंधणो ? ण, सुक्कंधारपवक्खचंदमंडलभुजगारप्पदराणं व
साहावियत्तादो । जदि अप्पदरकालम्मि भ्मीणमाणदव्वादो भुजगारकालम्मि संचिद-
दव्वं विसेसाहियं चेव होदि तो खविदकम्मसियदव्वादो गुणिदकम्मसियदव्वेण वि
विसेसाहिण्णेव होदव्वं ? ण च एवं, वेदणाए चुण्णिमुत्तेण च सह विरोहादो
त्ति सच्चं विसेसाहियं चेव, कि तु ण विरोहो, सवयणविरोहं
मोत्तूण तंतंतरत्थेण विरोहाणव्वुवगमादो । वेयणा-चुण्णिमुत्ताणमुवएसो

है, क्योंकि अल्पतर कालके भीतर ज्ञयको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे भुजगार कालके भीतर सब्बित
हुआ द्रव्य असंख्यातवें भाग अधिक होता है ।

शंका—किन्हीं जीवोंके अपने जघन्य द्रव्यसे सख्यातवें भाग अधिक, सख्यातगुणा अधिक
या असख्यातगुणा अधिक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि असंख्यातवें भाग अधिक ही होता है, क्योंकि उत्कृष्ट योगके साथ
दो छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवके भी अल्पतर कालसे भुजगार
काल नियमसे अधिक ही उपलब्ध होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—उच्चारणाचार्यके ‘नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक है’ इस वचनसे उप-
लब्ध होता है ।

शंका—कर्म प्रदेशोंका भुजगार और अल्पतर पद किस निमित्तसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकार शुक्ल और कृष्णपक्षमें चन्द्रमण्डल स्वभावतः
वृद्धता और घटता है उसी प्रकार यहाँ पर कर्मप्रदेशोंका भुजगार और अल्पतर पद स्वभावसे
होता है ।

शंका—यदि अल्पतर कालके भीतर नष्ट होनेवाले द्रव्यसे भुजगार कालके भीतर सञ्चित
होनेवाला द्रव्य विशेष अधिक ही होता है तो क्षपितकर्मांशिकके द्रव्यसे गुणितकर्मांशिक जीवका
द्रव्य भी विशेष अधिक होना चाहिए । परन्तु ऐसा नहीं है, क्यों कि ऐसा मानने पर वेदना और
चूर्णिसूत्रके साथ विरोध आता है ?

समाधान—विशेष अधिक है यह सत्य है तो भी वेदना और चूर्णिसूत्रके साथ विरोध नहीं
आता, क्योंकि स्ववचन विरोधको छोड़ कर दूसरे ग्रन्थमें प्रतिपादित अर्थके साथ आनेवाले
विरोधको नहीं स्वीकार किया गया है ।

वेदना और चूर्णिसूत्रोंका उपदेश है कि अल्पतर कालके भीतर ज्ञयको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे

मागम् । सैतान् पयदीर्णं भियमा अविहत्तिमो । एवं सत्तकसायानं । कोमसंजं
 नहं । पदसविहत्तिमो योण-मायासंजं । गिर्या अमं । असत्सें गुणम् । सोमसंजं
 गिर्या अमं । असत्सें भागम् । सैतान् पयदीर्णं गिर्या अविहत्तिमो । मागसंजं
 अहं । पदसविहत्तिमो योण-मायासंजं । गिर्या अमं । असत्सें गुणम् । सोमसंजं
 गिर्या अमं । असत्सें भागम् । मायासंजं नहं । पदेसविहत्तिमो सोमसंजं
 गिर्या अमं । असत्सें गुणम् । सैतान् पयदीर्णं गिर्या अविहत्तिमो । सोमसंजं नहं पदे
 विहं । एकारसं-तिष्णिबद्धं । गिर्या अमं । असत्सें गुणम् । अण्णोक्तं गिर्या
 अमं । असत्सें भागम् ।

१ १ २ इत्येवम् । नहं । पदे विहत्तिमो तिष्णिसंजं पुरिसं । भियमा
 अमं । असत्सें गुणम् । सोमसंजं अण्णोक्तं । गिर्या अमं । असत्सें भागम् । एवं
 पदसविहत्तिमो । पुरिसवेदं नहं । पदसं । तिष्णिसंजं । गिर्या अमं । असत्सें
 गुणम् । सोमसंजं । गिर्या अमं । असत्सें भागम् । इत्तं नहं । पदे
 विहत्तिमो तिष्णिसंजं पुरिसवेदं । गिर्या अमं । असत्सें गुणम् । सोमसंजं

अभिहित्तिमात्रा होता है । इसी प्रकार सात कण्ठोंकी मुख्यतासे छानिकरै जानना चाहिए । कोमसंज्यकी अपन्य प्रदेशाभिहित्तिमात्रे जीवके मानसंज्ञान और मायासंज्ञानकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सोमसंज्ञानकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातवै माग अधिक होती है । नहं रूप प्रकृतियोंकी नियमसे अभिहित्तिमात्रा होता है । मानसंज्ञानकी अपन्य प्रदेशाभिहित्तिमात्रे जीवके माया-संज्ञानकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सोमसंज्ञानकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातवै माग अधिक होती है । मायासंज्ञानकी अपन्य प्रदेशाभिहित्तिमात्रे जीवके सोमसंज्ञानकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशा-भिहित्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । नहं रूप प्रकृतियोंकी अभिहित्तिमात्रा होता है । सोमसंज्ञानकी अपन्य प्रदेशाभिहित्तिमात्रे जीवके माग कयाप और तीन वेदोंकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । नहं नोक्तपादोंकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातवै माग अधिक होती है ।

१ १ २ कीवेदकी अपन्य प्रदेशाभिहित्तिमात्रे जीवके तीन संज्ञान और पुरुषवेदकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सोम संज्ञान और नहं मागपादोंकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातवै माग अधिक होती है । इसी प्रकार पदसविहत्तिमो मुख्यतासे छानिकरै जानना चाहिए । पुरुषवेदकी अपन्य प्रदेशा-भिहित्तिमात्रे जीवके तीन संज्ञानोंकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यात-गुणी अधिक होती है । सोमसंज्ञानकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातवै माग अधिक होती है । नहं की अपन्य प्रदेशाभिहित्तिमात्रे जीवके तीन संज्ञान और पुरुषवेदकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेशाभिहित्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।

णियमा अजह० असंखे०भागवभ० । पंचणोक० णियमा तं तु वेद्वाणपदिदा अणंत-
भागवभ० असंखे०भागवभहि० । एवं पंचणोकसायाणं ।

§ १०३. आदेसेण णेरइएसु, मिच्छ० जह० पदेसविहृत्तिओ सम्म०सम्मापि०
णियमा अज० असंखे०गुणवभहिया । वारसक०णवणोक० णियमा अज० असंखे०-
भागवभहिया । इत्थि-णयुंसयवेदाणं होदु णाम असंखे०भागवभहियत्त, मिच्छत्तं गंतूण
पडिवक्खवंधगद्धाए चरिमसमयम्मि जहणसंतकम्मत्तुवलंभादो । ण सेसकम्माणं,
तेतीससागरोवमेसु पंचिदियजोगेण एइदियजोगं पेक्खिदूण असंखे०गुणेण संचिदत्तादो
त्ति ? ण एस दोसो, खविदकम्मंसियजहणदव्वं पेक्खिदूण गुणिदकम्मंसियभुजगार-
कालम्मि सचिददव्वस्स असंखे०गुणहीणत्तादो । एदं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव
सण्णियासादो । एवं संते जहणदव्वादो उक्कस्सदव्वमसखे०गुणं ति भणिदवेयणा
चुण्णिमुत्तेहि विरोहो होदि त्ति ण पच्चवट्ठेयं, भिण्णोवएसत्तादो । सम्म० जह०

लोभसज्जलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । पाँच नोकपायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है या अजघन्य प्रदेश-विभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार पाँच नोकपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

§ १०३ आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तियाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है ।

शंका—खीवेद और नपुसकवेदकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक होओ, क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर प्रतिपत्त प्रकृतिके बन्धक कालके अन्तिम समयमें, जघन्य सत्कर्म उपलब्ध होता है । परन्तु शेष कर्मोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक नहीं हो सकती, क्योंकि तेतीस सागरकी आयुवाले जीवोंमें एकेन्द्रिय जीवके योगको देखते हुए असंख्यातगुणे पञ्चेन्द्रिय जीवके योगद्वारा उनका द्रव्य सञ्चित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि त्रुपितकर्मांशिक जीवके जघन्य द्रव्यको देखते हुए गुणितकर्मांशिक जीवके भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है ।

शंका—ऐसा होने पर जघन्य द्रव्यसे उत्कृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा होता है ऐसा कथन करनेवाले वेदना चूर्णिसूत्रोंके साथ विरोध आता है ?

समाधान—ऐसा निश्चय नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भिन्न उपदेश है ।

अप्यदरकाशमि मिश्रमागद्व्यादो भुजगारकाशमि शुणितकर्मसिपविसयमि
 संधिस्त्रमागद्व्यं कस्य वि असंसेखमागद्व्यमिहियं, कस्य वि संसेखमागद्व्यमिहियं, कस्य
 वि संसेखगुणमिहियं, कस्य वि असंसेखगुणमिति । तेन तस्य शुणितकर्मसिपकाशो
 कर्मद्विदिमेषो । सधिदकर्मसियमि पुन भुजगारकाशमि संधिदद्व्यादो अप्यदर
 काशमि म्भीनद्व्यमसंसे०मागद्व्यमिहियं, कस्य वि संसेखमागद्व्यमिहियं संसेखद्व्य
 म्भीनमसंसेखगुणमिहियं य । एवं ह्यदो गम्यद ? कर्मद्विदिमेतत्सधिदकर्मसिपकाश-
 पदुपायणादो । उच्चारणाए पुन शुणितकर्मसियमि अप्यदरकाशमि म्भीनद्व्यादो
 भुजगारकाशमि संधिदद्व्यं विसेसाहियं चेह । एवं ह्यदो गम्यदे ? अमसंतनकपसस
 नहणद्व्यादो वेकाद्विकाशम्यंतरे पंधिदियजोगेन संधिद पि अमसंतनकपद्व्यं
 विसेसाहियं चेने ति वयणादो । यदि एवं तो उच्चारणाए कर्मद्विदिमेषो
 शुणितकर्मसिपकाशमे कियह पकविदो ? भुजगारकाशमि सममसंसेखदिमाग-
 मेकद्व्यसंतनहणह ।

§ १० सम्पापिच्छतस्स नहणपदेसविहसिजो मिच्छ नणारसक०-विणिज-

शुणितकर्मरितिके विपयस्य भुजगार काशके भीतर सञ्चित हुवा इत्य कहीं पर असंख्यातवें माग
 अधिक है, कहीं पर संख्यातवें माग अधिक है, कहीं पर संख्यातगुणा अधिक है और कहीं पर
 असंख्यातगुण अधिक है । इस लिए वहाँ शुणितकर्मरितिकय कस कर्मस्थितिप्रमाण है । परन्तु
 कपितकर्मरितिके भुजगार काशके भीतर सञ्चित हुए इत्यसे अस्पतर काशके भीतर चयको मात्र
 होनेका इत्य कहीं पर असंख्यातवें माग अधिक है, कहीं पर संख्यातवें माग अधिक है, कहीं पर
 संख्यातगुणा अधिक है और कहीं पर असंख्यातगुणा अधिक है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—कपितकर्मरितिकय कास कर्मस्थितिप्रमाण कहा है । उससे जाना जाता है ।

परन्तु उच्चारणाके अनुसार शुणितकर्मरितिकसम्बन्धी अस्पतरकाशके भीतर चयको मात्र हुए
 इत्यसे भुजगारकाशके भीतर सञ्चित हुवा इत्य विशेष अधिक ही है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—सोमसंज्ञकनके अथवा इत्यसे दो अपासठ सगर काशके भीतर पञ्चत्रिय
 जीवके पाग हाए सञ्चित हुवा भी सोमसंज्ञकनक इत्य विशेष अधिक ही है इस वचनसे जाना
 जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो उच्चारणामि शुणितकर्मरितिकय कास कर्मस्थितिप्रमाण किसलिए
 कहा है ?

समाधान—भुजगार काशके भीतर अपना असंख्यातवें माग अधिक इत्यक संज्ञ करनेके
 लिए कहा है ।

§ १ ऊर्ध्वमिध्यातकी अथवा मदेरमिध्यातको जीवके मिध्यात, पन्द्रह कय और

वेद० णियमा अज० असंखे० गुणवभहिया । लोभसंज० छण्णोक० णियमा अज० असंखे० भागवभहिया । सम्मत्त० णियमा अविहत्तिओ । सम्मत्तस्स जहणपदेस-विहत्तिओ मिच्छ०-सम्मामि०-पण्णारसक०-तिण्णिवेदाणं णियमा अज० असंखे० गुणवभहिया । लोभसंज० छण्णोक० णियमा अज० असंखे० भागवभहि० । कारणं पुब्बं परूविदं ति नेह परूविज्जदे ।

§ १०१. अणंताणु० कोध० जहणपदे० माण-माया-लोभाणं णियमा त तु विहाणपदिदा अणंतभागवभहि० असंखे० भागवभहिया वा । मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-एकारसक०-तिण्णिवेदाणं णियमा अज० असंखे० भागवभहिया । लोभ-संज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे० भागवभहिया । एव' माण-माया-लोभाणं । अपच्चक्खाणकोध० जह० पदेसविहत्तिओ सत्तकसायाणं णियमा विहत्तिओ । तं तु वेहाणपदिदा अणंतभागवभहिया असंखे० भागवभहिया । तिण्णिसंजल०-तिण्णिवेद० णियमा अज० असंखे० गुणवभहि० । लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे०-

तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । तथा वह सम्यक्त्वका नियमसे अविभक्तिवाला होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कपाय और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । कारण पहले कह आये हैं, इसलिए यहाँ उसका कथन नहीं करते ।

§ १०१. अनन्तानुवन्धी क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मान, माया और लोभकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार मान, माया और लोभकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सात कपायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति या अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । तीन संज्वलन और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । वह शेष प्रकृतियोंका नियमसे

१ आ० प्रती 'असंखे० भागवभहिया वा । एव' इति पाठः । २ आ० प्रती 'छण्णोक० अज०' इति पाठः ।

मामम्भ० । सैसाण पयहीनं गियमा अविहतिमो । एवं सत्तकसापार्ण । कोपसंभ०
 मह० पदसविहतिमो योण-मापासंभ० गियमा अज० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ०
 गियमा अज० असंसे० भागम्भ० । सैसाण पयहीनं गियमा अविहतिमो । माणसंभ०
 महण्णपदसविहतिमो मापासंभ० गियमा अज० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ०
 गियमा अज० असंसे० भागम्भ० । मापासंभ० मह० पदेसविहतिमो सोमसंभ०
 गियमा अज० असंसे० गुणम्भ० । सैसाणपविहतिमो । सोमसंभ० मह० पदे-
 विह० पकारस० विष्णिवेद० । गियमा अज० असंसे० गुणम्भ० । दण्णोक्क० गियमा
 अज० असंसे० भागम्भ० ।

१०२ इत्थिवेद० मह० पदे-विहतिमो विष्णिंसंभ० पुरिस० गियमा
 अज० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ० दण्णोक्क० गियमा अज० असंसे० भागम्भ० ।
 एवं णवुसपवेदस्स । पुरिसवेद० मह० पदस० विष्णिंसंभ० गियमा अज० असंसे०
 गुणम्भ० । सोमसंभ० गियमा अज० असंसे० भागम्भ० । इत्थ० मह० पदे-
 विहतिमो विष्णिंसंभ० पुरिसवेद० गियमा अज० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ०

अविमत्तिवात्ता होता है । इसी प्रकार स्यात् कपायोंकी मुख्यतासे स्मिन्धरै जानना चाहिये ।
 सोमसंभवनकी अपन्य प्रदेराविमत्तिवात्ता जीवके मानसंभवन और मायासंभवनकी नियमसे
 अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सामसंभवनकी नियमसे
 अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातवै मग अधिक होती है । यह क्षेत्र प्रकृतियोंका
 नियमसे अविमत्तिवात्ता होता है । मानसंभवनकी अपन्य प्रदेराविमत्तिवात्ता जीवके माया
 संभवनकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।
 सोमसंभवनकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातवै मग अधिक होती है ।
 मायासंभवनकी अपन्य प्रदेराविमत्तिवात्ता जीवके सोमसंभवनकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेरा-
 विमत्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । यह क्षेत्र प्रकृतियोंका अविमत्तिवात्ता
 होता है । सामसंभवनकी अपन्य प्रदेराविमत्तिवात्ता जीवके मया कपाय और तीन
 वेदोंकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।
 यह नोकायोंकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातवै मग अधिक
 होती है ।

१०२ जीवकी अपन्य प्रदेराविमत्तिवात्ता जीवके तीन संभवन और पुरुषवेदकी नियमसे
 अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सोम संभवन और यह
 नोकायोंकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातवै मग अधिक होती है ।
 इसी प्रकार मनुष्यवेदकी मुख्यतासे स्मिन्धरै जानना चाहिये । पुरुषवेदकी अपन्य प्रदेरा-
 विमत्तिवात्ता जीवके तीन संभवनकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यात-
 गुणी अधिक होती है । सामसंभवनकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो
 अमंभ्यातवै मग अधिक होती है । साम्यकी अपन्य प्रदेराविमत्तिवात्ता जीवके तीन संभवन
 और पुरुषवेदकी नियमसे अत्रापन्य प्रदेराविमत्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।

णियमा अजह० असंखे० भागवभ० । पंचणोक० णियमा तं तु वेद्धानपदिदा अणंत-
भागवभ० असंखे० भागवभहि० । एवं पंचणोकसायाणं ।

§ १०३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ० जह० पदेसविहृतिओ सम्म० सम्मामि०
णियमा अज० असंखे० गुणवभहिया । वारसक० णवणोक० णियमा अज० असंखे०-
भागवभहिया । इत्थि-णवुंसयवेदाणं होदु णाम असंखे० भागवभहियत्त, मिच्छत्तं गंतूण
पडिवक्खबंधगद्धाए चरिमसमयम्मिं जहणसंतकम्मत्तुवलंभादो । ण सेसकम्माणं,
तेत्तीससागरोवमेसु पंचिदियजोगेण एइदियजोगं पेक्खिदूण असंखे० गुणेण संचिदत्तादो
त्ति ? ण एस दोसो, खविदकम्मंसियजहणदव्वं पेक्खिदूण गुणिदकम्मंसियभुजगार-
कालम्मि संचिददव्वस्स असंखे० गुणहीणत्तादो । एदं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव
सण्णियासादो । एवं संते जहणदव्वादो उक्खस्सदव्वमसंखे० गुणं ति भणिदवेयणा
चुण्णिमुत्तेहि विरोहो होदि त्ति ण पच्चवट्ठेयं, भिण्णोवएसत्तादो । सम्म० जह०

लोभसज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । पाँच नोकषायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है या अजघन्य प्रदेश-विभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार पाँच नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

§ १०३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है ।

शंका—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक होओ, क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धक कालके अन्तिम समयमें, जघन्य सत्कर्म उपलब्ध होता है । परन्तु शेष कर्मोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक नहीं हो सकती, क्योंकि तेत्तीस सागरकी आयुवाले जीवोंमें एकेन्द्रिय जीवके योगको देखते हुए असंख्यातगुणे पञ्चेन्द्रिय जीवके योगद्वारा उनका द्रव्य सञ्चित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्षपितकर्मांशिक जीवके जघन्य द्रव्यको देखते हुए गुणितकर्मांशिक जीवके भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है ।

शंका—ऐसा होने पर जघन्य द्रव्यसे उत्कृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा होता है ऐसा कथन करनेवाले वेदना चूर्णिसूत्रोंके साथ विरोध आता है ?

समाधान—ऐसा निश्चय नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भिन्न उपदेश है ।

पदेसविहारीमो मिच्छत्-आरसक-अवणोक-गियमा अम-असंखे-भाक्कमहि-।
सम्मापि-अर्णवापु-अरुह-गियमा अम-असंखे-गुणम्म-। सम्मापि-अर-
पदेसविहारीमो मिच्छत्-आरसक-अवणोक-गियमा अम-असंखे-भाक्कम-।
अर्णवापु-अरुह-गियमा-अम-असंखे-गुणम्महि-।

११६ अर्णवापु-काप-अर-पदेसविहारीमो मिच्छत्-आरसक-अवणोक-
गियमा अम-असंखे-भाक्कमहि-। सम्म-सम्मापि-गियमा अम-असंखे-
गुणम्म-। माण-माया-सोमार्ण-गियमा तं तु विहाणपदिहा अर्णतमामम्महि-
असंखे-भाक्कम- वा । ए-माण-माया-सोमार्ण । अपक्कवत्ताणकोप-अर-
पदेसविहारीमो मिच्छत्-सत्ताण-गियमा अम-असंखे-भाक्कम-। सम्म-
सम्मापि-अर्णवापु-अरुह-गियमा अम-असंखे-गुणम्म-। एकारसक-अप-
हुण्ड-गियमा तं तु विहाणपदिहा-अर्णतमामम्महि-असंखे-भाक्कमहि- वा ।
एवमेकारसक-अप-हुण्डार्ण-।

सम्पत्त्वकी अपम्य प्रदेराविम्विच्छते जीवके मिच्छात्त्व, बाह्य कथ्य और भी लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातवै भाग अधिक होती है। सम्पत्त्वमिच्छात्त्व और अनन्तानुबन्धीषुप्यकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। सम्पत्त्वमिच्छात्त्वकी अपम्य प्रदेराविम्विच्छते जीवके मिच्छात्त्व बाह्य कथ्य और भी लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातवै भाग अधिक होती है। अनन्तानुबन्धीषुप्यकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है।

११४ अनन्तानुबन्धी कोमकी अपम्य प्रदेराविम्विच्छते जीवके मिच्छात्त्व, बाह्य कथ्य और भी लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातवै भाग अधिक होती है। सम्पत्त्व और सम्पत्त्वमिच्छात्त्वकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। अनन्तानुबन्धी माण माया और सोमकी नियमसे अपम्य प्रदेराविम्विच्छती भी होती है और अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती भी होती है। यदि अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है तो वह वा न्याय पतिन होती है—वा ता अनन्तवै भाग अधिक होती है या असंख्यातवै भाग अधिक होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी माण माया और सोमकी मुख्यतासे सम्मिलन जानना चाहिए। अपम्यकथ्यान्वयकापकी तथ्य प्रदेराविम्विच्छतासे जीवके मिच्छात्त्व और सप्त लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातवै भाग अधिक होती है। सम्पत्त्व सम्पत्त्वमिच्छात्त्व और अनन्तानुबन्धीषुप्यकी नियमसे अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है। बाह्य कथ्य, मय और सुगुणकी नियमसे अपम्य प्रदेराविम्विच्छती भी होती है और अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती भी होती है। यदि अत्राप्य प्रदेराविम्विच्छती है तो वह वा न्याय पतिन होती है—वा ता अनन्तवै भाग अधिक होती है या असंख्यातवै भाग अधिक होती है। इसी प्रकार बाह्य कथ्य, मय और सुगुणकी मुख्यतासे सम्मिलन जानना चाहिए।

